कार्ल मार्क्स (1867)

पूँजी

पहली पुस्तक

पूंजीवादी उत्पादन

कार्ल मार्क्स

पूंजी — प्रथम खंड

भाग 1 पण्य और द्रव्य

अध्याय 1 | पण्य

अनुभाग- 1 पण्य के दो कारक : उपयोग मूल्य और मूल्य (मूल्य का सार और मूल्य का परिमाण)

अनुभाग- 2 पण्यों में निहित श्रम का दोहरा स्वरूप

अनुभाग- 3 मूल्य का रूप अथवा विनिमय-मूल्य

- क) मूल्यों का प्राथमिक अथवा सांयोजिक रूप
  - 1) मूल्य की अभिव्यंजना के दो ध्रुव : सापेक्ष रूप और समतुल्य-रूप
  - 2) मूल्य का सापेक्ष रूप
    - क) इस रूप की प्रकृति और उसका अर्थ
    - ख) सापेक्ष मूल्य का परिमाणात्मक निर्धारण
  - 3) मूल्य का समतुल्य रूप
  - 4) मूल्य के प्राथमिक रूप पर उसकी समग्रता में विचार
- ख) मूल्य का सम्पूर्ण अथवा विस्तारित रूप
  - 1) मूल्य का विस्तारित सापेक्ष रूप
  - 2) विशिष्ट समतुल्य-रूप
  - 3) मूल्य के सम्पूर्ण अथवा विस्तारित रूप के दोष
- ग) मूल्य का सामान्य रूप
  - 1) मूल्य के रूप का बदला हुआ स्वरूप
  - 2) मूल्य के सापेक्ष रूप और समतुल्य-रूप का अन्योन्याश्रित विकास
  - 3) मूल्य के सामान्य रूप से द्रव्य-रूप में संक्रमण
- घ) द्रव्य-रूप

अनुभाग-4 पण्यों की जड़-पूजा और उसका रहस्य

अनुभाग 1 – पण्य के दो कारक : उपयोग-मूल्य और मूल्य (मूल्य का सार और मूल्य का परिमाण)

जिन समाजों में उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली व्याप्त है, उनमें धन" पण्यों के विशाल संचय' [1]
के रूप में सामने आता है और उसकी इकाई होती है एक पण्य. इसलिए हमारी खोज अवश्य ही पण्य के विश्लेषण से आरंभ होनी चाहिए.

पण्य या जिंस के बारे में सबसे पहली बात यह है कि वह इमसे बाहर की कोई वस्तु होती है. वह अपने गुणों से किसी न किसी प्रकार की मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करती है. इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि इन आवश्यकताओं का क्या स्वरूप है, उदाहरण के लिए, वे पेट से पैदा हुई हैं या कल्पना से.[2]

न ही हम यहाँ जानना चाहते हैं कि कोई वस्तु इन आवश्यकताओं को किस तरह पूरा करती है : सीधे-सीधे, जीवन-निर्वाह के साधन के रूप में, या अप्रत्यक्ष ढंग से, उत्पादन के साधन के रूप में.

लोहा, कागज, आदि प्रत्येक उपयोगी वस्तु को गुणवत्ता और परिणाम, इन दो दृष्टियों से देखा जा सकता है. प्रत्येक उपयोगी वस्तु में बहुत से गुणों का समावेश होता है और इसलिए वह नाना प्रकार से उपयोग में आ सकती है. वस्तुओं के विभिन्न उपयोगों का पता लगाना इतिहास का काम है. [3]

इसी प्रकार इन उपयोगी वस्तुओं के परिमाणों के सामाजिक दृष्टि से मान्य मापदंडो की स्थापना करना भी इतिहास का ही काम है. इन मापदंडो के विविधता का मूल आंशिक रूप से तो इस बात में है कि मापी जानेवाली वस्तुएं नाना प्रकार की होती है, और आंशिक रूप से उसका मूल रीती-रिवाजों में निहित है.

किसी वस्तु की उपयोगिता उसे उपयोग-मूल्य प्रदान करती है. [4]

लेकिन यह उपयोगिता कोई हवाई चीज नहीं होती. वह चूँकि पण्य के भौतिक गुणों से सीमित होती है, इसलिए पण्य से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं होता. इसलिए कोई भी पण्य, जैसे लोहा, अनाज या हीरा, जहाँ तक वह एक भौतिक वस्तु है, वहां तक वह उपयोग-मूल्य, यानि उपयोगी वस्तु होता है. पण्य का यह गुण इस बात से स्वतन्त्र है कि उसके उपयोगी गुणों से लाभ उठाने के लिए कितने श्रम की आवश्यकता होती है. जब हम उपयोग मूल्य पर विचार करते हैं, तब हम सदा यह मानकर चलते हैं कि हम निश्चित परिमाणों की चर्चा कर रहे हैं, जैसे इतनी दर्जन घडिया, इतने गज कपडा या इतने टन लोहा. पण्यों के उपयोग-मूल्यों का अलग से अध्ययन किया जाता है, यह पण्यों के वाणिज्यिक ज्ञान का विषय है. [5]

उपयोग-मूल्य केवल उपयोग अथवा उपभोग के द्वारा ही वास्तविकता बनते है, और धन का सामाजिक रूप चाहे जैसा हो, उसका सारतत्त्व भी सदा ये उपयोग-मूल्य ही होते हैं इसके आलावा, समाज के जिस रूप पर हम विचार करने वाले हैं, उसमें उपयोग-मूल्य विनिमय-मूल्य के भौतिक आधान भी होते हैं.

पहली दृष्टि में विनिमय-मूल्य एक परिमाणात्मक संबंध के रूप में , यानि उस अनुपात के रूप में सामने आता है, जिस अनुपात में एक प्रकार के उपयोग-मूल्यों का दूसरे प्रकार के उपयोग-मूल्यों से विनिमय होता है. [6]

यह संबंध समय और स्थान के अनुसार लगातार बदलता रहता है. इसलिए विनिमय-मूल्य एक संयोगिक और सर्वथा सापेक्ष चीज मालूम होता है, चुनांचे यथार्थ मूल्य, अर्थात ऐसा विनिमय मूल्य, जो पण्यों से अभिन्न रूप से जुडा हुआ तथा उनमें अन्तर्निहित है, ऐसा यथार्थ मूल्य स्वतः विरोधी प्रतीत होता है . [7]

आईये, इस मामले पर थोडा और गहराई से विचार करें.

माना कि एक पण्य – मिसाल के लिए, एक क्वार्टर गेहूं – , जिसका x बूटपालिश, y रेशम और z सोने, आदि से विनिमय होता है. संक्षेप में यह कहिये कि उसका दूसरे पण्यों से बहुत ही भिन्न-भिन्न अनुपातों में विनिमय होता है. इसलिए गेहूं का एक विनिमय-मूल्य होने के बजाय कई विनिमय-मूल्य होंगे. लेकिन चूंकि x बूटपालिश , y रेशम या z सोने , आदि में से प्रत्येक एक क्वार्टर गेहूं के विनिमय-मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए विनिमय मूल्यों के रूप में x बूटपालिश, y रेशम या z सोने आदि में एक दूसरे का स्थान लेने की योग्यता होनी चाहिए, यानी वे सब एकज दूसरे के बराबर होने चाहिए. इसलिए पहली बात तो यह निकली कि किसी एक पण्य के मान्य विनिमय-मूल्य किसी समान वस्तु को व्यक्त करते है, और दूसरी यह कि विनिमय-मूल्य आम तौर पर किसी ऐसी वस्तु को व्यक्त करने का ढंग अथवा किसी ऐसी वस्तु का इन्द्रियगम्य रूप मात्र है, जो उसमें निहित है और उससे भिन्न भी है.

दो पण्यों, मिसाल के लिए, अनाज और लोहे को ही लें. जिन अनुपातों में उनका विनिमय किया जाता है, वे अनुपात चाहे जो भी हों , उनको सदा ऐसे समीकरण के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, जिनमें अनाज की एक निश्चित मात्रा लोहे की किसी एक मात्रा के बराबर होती है : मिसाल के लिए, १ क्वार्टर अनाज = x हंड्रेडवेट लोहा. यह समीकरण हमें क्या बतलाता है ? वह हमें यह बतलाता है कि दो अलग-अलग चीजों में – १ क्वार्टर अनाज और x हंड्रेडवेट लोहे – में कोई ऐसी चीज पाई जाती है, जो दोनों में सामान मात्राओं में मौजूद है. इसलिए इन दो चीजों को एक तीसरी चीज के बराबर होना चाहिए, जो खुद न तो पहली चीज हो सकती है और न दूसरी. इसलिए दोनों ही चीजों को, जहाँ तक वे विनिमय-मूल्य हैं, इस तीसरी चीज में बदल देना संभव होना चाहिए.

ज्यामिति का एक सरल उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देगा. ऋजुरेखीय आकृतियों के क्षेत्रफलों का हिसाब लगाने और उनकी आपस में तुलना करने के लिए हम उनको त्रिकोणों में विभाजित कर डालते हैं. लेकिन खुद त्रिकोण का क्षेत्रफल एक ऐसी चीज के द्वारा व्यक्त किया जाता है, जो उसकी दृश्य आकृति से बिलकुल भिन्न है, अर्थात उसका क्षेत्रफल आधार तथा ऊँचाई के गुणनफल के आधे के बराबर होता है. इसी तरह पण्यों के विनिमय मूल्य को भी किसी ऐसी चीज के द्वारा व्यक्त करना संभव होना चाहिए, जो उन सबमें मौजूद हो और जिसकी कम या ज्यादा मात्रा का वे सारे पण्य प्रतिनिधित्व करते हों.

यह “चीज”, सबमें मौजूद है, पण्यों का ज्यामितीय, भौतिक, रासायनिक अथवा कोई श्रम अन्य प्राकृतिक गुण नहीं हो सकता. ऐसे गुणों की ओर तो हम केवल उसी हद तक ध्यान देते हैं, जिस हद तक कि उनका इन पण्यों की उपयोगिता पर प्रभाव पड़ता है, या जिस हद तक कि ये गुण उनको उपयोग मूल्य बनाते हैं. लेकिन जाहिर है कि पण्यों का विनिमय एक ऐसा कार्य है, जिसकी मुख्य विशेषता यह होती है कि उसमें उपयोग-मूल्य को बिल्कुल अनदेखा किया जाता है. तब एक उपयोग मूल्य उतना ही अच्छा होता है, जितना कोई दूसरा उपयोग मूल्य, बशर्ते की वह पर्याप्त मात्रा में मौजूद हो. या, जैसा कि बार्बोन ने बहुत पहले कहा था, “यदि उनके विनिमय-मूल्य बराबर हों, तो एक तरह की जिंस उतनी ही अच्छी है, जितनी दूसरी तरह की जिंस. सामान मूल्य की चीजों में कोई अंतर या भेद नहीं होता…सौ पौंड की कीमत का सीसा या लोहा उतना ही मूल्य रखता है, जितना सौ पाउंड की चाँदी या सोना.” [8]

उपयोग-मूल्यों के रूप में पण्यों के बारे में सबसे बड़ी बात यह होती है कि उनमें अलग-अलग प्रकार के गुण होते है, लेकिन विनिमय-मूल्य के रूप में वे महज अलग-अलग परिमाण होते है. और इसलिए उपयोग-मूल्य का उनमें एक कण भी नहीं होता.

अतएव यदि हम पण्यों के उपयोग-मूल्य की ओर ध्यान न दें, तो उनमें केवल एक ही समान तत्त्व बचता है, और वह यह कि वे सब श्रम के उत्पाद हैं. लेकिन हमारे हाथों में खुद श्रम के उत्पाद में भी एक परिवर्तन हो गया है. यदि हम उसे उनके उपयोग-मूल्य से अलग कर लेते हैं, तो उनके साथ-साथ हम उसे उन

भौतिक तत्त्वों और आकृतियों से भी अलग कर डालते हैं, जिन्होंने इस उत्पाद को उपयोग-मूल्य बनाया है. तब हम उसमें, मेज़, घर, सूत या कोई भी अन्य उपयोगी वस्तु नहीं देखते. तब एक भौतिक वस्तु के रूप में उसका अस्तित्व आँखों से ओझल हो जाता है. और न ही तब उसे, बढई , राज और कातनेवाले के श्रम के उत्पाद के रूप में या निश्चित ढंग के किसी भी अन्य उत्पादक श्रम के उत्पाद के रूप में माना जा सकता है. तब खुद उत्पादों के उपयोगी गुणों के साथ-साथ हम उसमें निहित श्रम के विभिन्न, प्रकारों के उपयोगी स्वरूप को तथा उस श्रम के ठोस रूपों को भी अनदेखा कर देते है, तब उस एक चीज को छोड़कर , जो उन सबमें सामान रूप से मौजूद होती है, और कुछ नहीं बचता, और सभी प्रकार के श्रम एक ही ढंग के श्रम में बदल जाते है, और वह होता है अमूर्त मानव-श्रम.

अब हम इस पर विचार करें कि इन विभिन्न प्रकार की उत्पादित वस्तुओं में से प्रत्येक में अब क्या बच रहा है. हरेक में एक सी अमूर्त वास्तविकता बच रही है, हरेक समांग मानव-श्रम का जमाव, खर्च की गयी श्रम-शक्ति का जमाव भर रह गया है, और अब इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि वह श्रम-शक्ति किस ढंग से खर्च की गयी है. अब ये सारी चीजें हमें सिर्फ इतना बताती हैं कि उनके उत्पादन में मानव-श्रम खर्च हुआ है और उनमें मानव श्रम निहित है. जब इन चीजों पर उनमें समान रूप से मौजूद इस सामाजिक तत्त्व के स्फटिकों के रूप में विचार किया जाता है, तब वे सब मूल्य होती हैं.

हम यह देख चुके हैं कि जब पण्यों का विनिमय होता है, तब उनका विनिमय-मूल्य एक ऐसी चीज के रूप में प्रकट होता है, जो उनके उपयोग-मूल्य से एकदम स्वतन्त्र होती है. परन्तु यदि हम उनको उनके उपयोग-मूल्य से अलग कर लें, तो उनका मात्र मूल्य बच जाता है, जिसकी परिभाषा हम ऊपर दे चुके है. इसलिए पण्यों के विनिमय-मूल्य के रूप में जो समान तत्त्व प्रकट होता है, वह उनका मूल्य है. हमारी खोज जब आगे बढेगी, तो हमें पता चलेगा कि विनिमय-मूल्य ही एक मात्र ऐसा रूप है, जिसमें पण्यों का रूप प्रकट हो सकता है, या जिसके द्वारा उसे व्यक्त किया जा सकता है; मगर फ़िलहाल हमें इससे -यानी मूल्य के इस रूप से – स्वतन्त्र होकर मूल्य की प्रकृति पर विचार करना है.

अतएव किसी भी उपयोग-मूल्य अथवा उपयोगी वस्तु में मूल्य केवल इसीलिए होता है कि उसमें अमूर्त रूप में मानव-श्रम निहित है, या यूं कहिये कि उसमें अमूर्त मानव-श्रम भौतिक रूप धारण किये होता है. किन्तु इस मूल्य का परिमाण मापा कैसे जाये ? जाहिर है, वह इस बात से मापा जायेगा कि उस वस्तु में मूल्य पैदा करनेवाले तत्त्व की – यानी श्रम की – कितनी मात्रा मौजूद है. लेकिन श्रम की मात्रा उसकी अवधि से मापी जाती है, और श्रम-काल का मापदंड हफ्ते, दिन या घंटे होते हैं.

कुछ लोग शायद इससे यह समझे कि यदि किसी भी पण्य का मूल्य उसपर खर्च किये गए श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है, तो मजदूर जितना सुस्त और अकुशल होगा, उसके द्वारा उत्पादित पण्य उतना ही अधिक मूल्यवान होता, क्योंकि उसके उत्पादन में उतना ही ज्यादा समय लगेगा. किन्तु वह श्रम, जो मूल्य का सार है, वह तो समांग मानव-श्रम है, उसमें तो एक सी समरूप श्रम-शक्ति खर्च की जाती है. समाज की कुल श्रम-शक्ति, जो उस समाज द्वारा उत्पादित तमाम पण्यों के मूल्यों के कुल जोड़ में साकार बनी है, यहाँ पर मानव श्रम-शक्ति की एक समांग राशिः के रूप में गिनी जाती है, भले ही वह राशिः असंख्य अलग-अलग इकाइयों का जोड़ हो. इनमें से प्रत्येक इकाई, जहाँ तक कि उसका स्वरूप समाज की औसत श्रम-शक्ति का है और जहाँ तक कि वह इस रूप में व्यवहार में आती है, यानी जहाँ तक कि उसे पण्य तैयार करने में औसत से ज्यादा -अर्थात सामाजिक दृष्टि से आवश्यक समय से अधिक -समय नहीं लगता, वहां तक वह किसी भी दूसरी इकाई जैसी ही होती है. सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम-काल वह है, जो उत्पादन की सामान्य परिस्थितियों में और उस ज़माने में प्रचलित औसत दर्जे की निपुणता तथा तीव्रता के द्वारा किसी वस्तु को पैदा करने के लिए आवश्यक हो. इंग्लैंड में जब पावरलूम करघों का इस्तेमाल शुरू हुआ, तो सूत की एक

निश्चित मात्रा को कपडे की शक्ल देने पर खर्च होने वाली श्रम की मात्रा पहले की तुलना में संभवतः आधी रह गयी. जाहिर है, हाथ का करघा इस्तेमाल करनेवाले बुनकरों को इसके बाद भी पहले जितना ही समय खर्च करना पड़ता था, लेकिन उसके बावजूद इस परिवर्तन के बाद उनके एक घंटे के श्रम का उत्पाद केवल आधे घंटे के सामाजिक श्रम का ही प्रतिनिधित्व करता था और इसलिए उस उत्पाद का मूल्य पहले से आधा रह गया था.

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी वस्तु के मूल्य का परिमाण इस बात से निश्चित होता है कि उसके उत्पादन के लिए सामाजिक दृष्टि से कितना श्रम चाहिए, अथवा सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम-काल कितना है. [9]

इस सम्बन्ध में हर अलग-अलग ढंग के पण्य को अपने वर्ग का औसत नमूना समझना चाहिए. [10]

इसलिए जिन पण्यों में श्रम की बराबर मात्राएँ निहित हैं या जिनको बराबर समय में पैदा किया जा सकता है, उनका एक सा मूल्य होता है. किसी भी पण्य के मूल्य का दूसरे किसी पण्य के मूल्य के साथ वही सम्बन्ध होता है, जो पहले पण्य के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम-काल का दूसरे पण्य के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम-काल के साथ होता है. "मूल्यों के रूप में तमाम पण्य घनीभूत श्रम-काल की निश्चित राशियां मात्र है." [11]

इसलिए, यदि किसी पण्य के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम-काल स्थिर रहता है, तो उसका मूल्य भी स्थिर रहेगा. लेकिन आवश्यक श्रम-काल श्रम की उत्पादिता में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन के साथ बदलता जाता है. यह उत्पादिता विभिन्न परिस्थितियों से निर्धारित होती है. अन्य बातों के अलावा, वह इस बात से निर्धारित होती है कि मजदूरों की औसत निपुणता कितनी है, विज्ञान की क्या दशा है तथा उसका व्यावहारिक प्रयोग कितना हो रहा है, उत्पादन का सामाजिक संगठन कैसा है, उत्पादन के साधनों का विस्तार तथा सामर्थ्य कितनी है और प्राकृतिक परिस्थितियां कैसी हैं. उदहारण के लिए, अनुकूल मौसम होने पर 8 बुशेल अनाज में जितना श्रम निहित होता है, प्रतिकूल मौसम होने पर उतना श्रम केवल चार बुशेल में निहित होता है. घटिया खानों के मुकाबले में बढ़िया खानों से उतना ही श्रम ज्यादा धातु निकाल लेता है. हीरे जमीन की सतह पर बहुत बिरले ही मिलते है, और इसलिए उनकी खोज में औसतन बहुत अधिक श्रम-काल खर्च होता है. इसलिए यहाँ बहुत छोटी सी चीज बहुत अधिक श्रम का प्रतिनिधित्व करती है. जेकब को तो इसमें भी संदेह है कि सोने का कभी पूरा मूल्य अदा किया गया है. हीरों पर यह बात और भी ज्यादा लागू होती है. एश्वेगे का कहना है कि ब्राजील की हीरों की खानों से 1823 तक 80 बरस में जितने हीरे प्राप्त हुए थे, उनसे इतने दाम भी नहीं मिले कि जितने उसी देश के ईख और कहवे के बागानों की डेढ बरस की औसत पैदावार से मिल जाते थे, हालाँकि हीरों में बहुत ज्यादा श्रम खर्च हुआ था और इसलिए वे अधिक मूल्य का प्रतिनिधित्व करते थे. यदि खाने अधिक अच्छी हों, तो उतना ही श्रम ज्यादा हीरों में निहित होगा और उनका मूल्य गिर जायेगा. यदि हमें थोडा सा श्रम खर्च करके कार्बन को हीरों में बदलने में कामयाबी मिल जायेगी, तो हो सकता है कि हीरों का मूल्य इंटों से भी कम रह जाये. आमतौर पर, श्रम की उत्पादिता जितनी अधिक होती है, किसी भी वस्तु के उत्पादन के लिए उतना ही कम श्रम-काल आवश्यक होता है, उस वस्तु में उतना ही कम श्रम निहित होता है और उनका मूल्य भी उतना ही कम होता है. इसके विपरीत, श्रम की उत्पादिता जितनी कम होती है, किसी भी वस्तु के लिए उतना ही अधिक श्रम-काल आवश्यक होता है और उसका मूल्य भी उतना ही अधिक होता है. इसलिए किसी भी पण्य का मूल्य उसमें निहित श्रम की मात्रा के अनुलोम अनुपात में और उत्पादिता के प्रतिलोम अनुपात में बदलता रहता है.

यह संभव है कि किसी वस्तु में मूल्य न हो, मगर वह उपयोग-मूल्य हो. जहाँ कहीं मनुष्य के लिए किसी वस्तु की उपयोगिता श्रम के कारण नहीं होता, वहां यही सूरत होती है. हवा, अछूती धरती, प्राकृतिक चारागाह,

आदि सब ऐसी ही चीजें हैं. यह भी संभव है कि कोई चीज उपयोगी हो और मानव श्रम की पैदावार हो, मगर पण्य न हो. जो कोई सीधे तौर पर खुद अपने श्रम के उत्पाद से अपनी आवश्यकताएं पूरी करता है, वह उपयोग मूल्य तो जरूर पैदा करता है, मगर पण्य पैदा नहीं करता. पण्य पैदा करने के लिए ज़रूरी है कि वह न सिर्फ उपयोग मूल्य पैदा करे, बल्कि दूसरों के लिए उपयोग-मूल्य यानी सामाजिक उपयोग-मूल्य पैदा करे. (और केवल दूसरों के लिए पैदा करना ही काफी नहीं है, उसके अलावा कुछ और भी चाहिए. मध्ययुगी किसान अपने सामंती स्वामी के लिए बेगार के तौर पर और अपने पादरी के लिए दक्षिणा के तौर पर अनाज पैदा करता था. लेकिन न तो बेगार का अनाज और न दक्षिणा का अनाज, दोनों में से कोई भी इसलिए पण्य नहीं था कि वह दूसरों के लिए पैदा किया गया था. पण्य बनाने के लिए ज़रूरी है कि उत्पाद एक के हाथ से विनिमय के ज़रिए दूसरों के हाथ में जाएँ, जिसके पास वह उपयोग-मूल्य के रूप में काम करेगा.) [11a]

आखिरी बात यह है कि यदि कोई चीज उपयोगी नहीं है, तो उसमें मूल्य भी नहीं हो सकता. यदि कोई चीज व्यर्थ है, तो उसमें निहित श्रम ही व्यर्थ है; ऐसे श्रम की गिनती श्रम के रूप में नहीं होती और इसलिए उसे कोई मूल्य पैदा नहीं होता.

अनुभाग- 2 पण्यों में निहित श्रम का दोहरा स्वरूप

पहली दृष्टि में पण्य दो चीजों -उपयोग-मूल्य और विनिमय मूल्य – के संश्लेष के रूप में हमारे सामने आया था. बाद में हमने यह भी देखा कि श्रम का भी वैसा ही दोहरा स्वरूप है, क्योंकि जहाँ तक कि वह मूल्य के रूप में व्यक्त होता है, वहां तक उसमें वे गुण नहीं होते, जो उपयोग-मूल्य के सृजनकर्त्ता के नाते उसमें होते हैं. पण्यों में निहित श्रम की इस दोहरी प्रकृति की और इशारा सबसे पहले मैंने किया था और उसका आलोचनात्मक अध्ययन भी सबसे पहले मैंने ही किया था [12]

यह बात चूँकि राजनीतिक अर्थशास्त्र को स्पष्ट रूप से समझने की धुरी है, इसलिए हमें विस्तार में जाना होगा.

दो पण्य ले लीजिये. मान लीजिये, एक कोट है और दूसरा १० गज सन का बना कपड़ा है, और कोट का मूल्य १० गज कपड़े के मूल्य का दुगना है, यानी यदि १० गज कपड़ा = W, तो कोट = 2 W.

कोट एक उपयोग-मूल्य है, जो एक खास आवश्यकता को पूरा करता है. उसका अस्तित्व एक खास ढंग की उत्पादक कार्रवाई का परिणाम है. इस उत्पादक कार्रवाई का स्वरूप उसके उद्देश्य, कार्य-पद्धति, विषय, साधनों और परिणाम से निर्धारित होता है. वह श्रम, जिसकी उपयोगिता इस प्रकार उसके उत्पाद के उपयोग-मूल्य में व्यक्त होती है या जो अपने उत्पाद को उपयोग-मूल्य बनाकर प्रकट होता है, उसे हम उपयोगी श्रम कहते हैं. इस संबंध में हम केवल उसके उपयोगी प्रभाव पर विचार करते है.

जिस प्रकार कोट और कपड़ा गुणात्मक दृष्टि से दो अलग-अलग तरह के उपयोग मूल्य हैं, उसी प्रकार उनको पैदा करनेवाले श्रम भी अलग-अलग तरह के दो श्रम हैं – एक दर्जी ने कोट सिया है, दूसरे में बुनकर ने कपड़ा बुना है. यदि ये दो वस्तुएं गुणात्मक दृष्टि से अलग-अलग न होतीं, यदि वे दो अलग-अलग गुणों वाले श्रम से पैदा न हुई होती, तो उनका एक दूसरे के साथ पण्यों का संबंध नहीं हो सकता था. कोटों का विनिमय कोटों से नहीं होता, एक उपयोग-मूल्य का उसी प्रकार के दूसरे उपयोग-मूल्य से विनिमय नहीं किया जाता.

जितने प्रकार के उपयोग मूल्य पाए जाते हैं, उनके अनुरूप उपयोगी श्रम के भी उतने ही प्रकार होते हैं; सामाजिक श्रम – विभाजन में जिस श्रेणी, प्रजाति, जाति एवं प्रभेद से श्रम का संबंध होता है, उसी के अनुसार

उसका वर्गीकरण होता है. श्रम-विभाजन पण्यों के उत्पादन की ज़रूरी शर्त है, लेकिन इसकी उल्ट बात सत्य नहीं है, यानी पण्यों का उत्पादन श्रम-विभाजन की जरूरी शर्त नहीं है. आदिम भारतीय ग्राम-समुदाय में श्रम का सामाजिक विभाजन तो होता है, लेकिन उसमें पण्यों का उत्पादन नहीं होता. या , यदि हम नजदीक की मिसाल लें, तो हर फैक्टरी के भीतर एक व्यवस्था के अनुसार श्रम का विभाजन होता है, लेकिन वह विभाजन इस तरह नहीं होता कि वहां काम करनेवाले कर्मचारी अपने अलग-अलग किस्म के उत्पादों का आपस में विनिमय करने लगें. उत्पादों की केवल वे ही किस्में एक दूसरी के संबंध में पण्य बन सकती है, जो अलग-अलग ढंग के श्रम से पैदा हुई हों और जिनको पैदा करनेवाला हर ढंग का श्रम स्वतन्त्र रूप से और व्यक्तियों की खातिर किया गया हो.

अस्तु हम अपनी चर्चा फिर जारी करते हैं. प्रत्येक पण्य के उपयोग-मूल्य में उपयोगी श्रम निहित होता है, अर्थात एक निश्चित उद्देश्य को सामने रखकर की गयी एक निश्चित ढंग की उत्पादक कार्रवाई. यदि प्रत्येक उपयोग- मूल्य में निहित श्रम गुणात्मक दृष्टि से अलग तरह का न हो, तो विभिन्न उपयोग-मूल्य पण्यों के रूप में एक दूसरे के मुकाबले में नहीं खड़े हो सकते. किसी भी ऐसे समाज में , जिसके उत्पाद आम तौर पर पण्यों का रूप धारण कर लेते है, अर्थात पण्य पैदा करनेवालों के किसी भी समाज में , अलग-अलग उत्पादक स्वतन्त्र रूप से तथा निजी तौर पर जो विभिन्न प्रकार के उपयोगी श्रम करते हैं, उनके बीच का यह गुणात्मक अंतर विकसित होकर एक जटिल व्यवस्था – यानी सामाजिक श्रम-विभाजन बन जाता है.

बहरहाल दर्जी अपना बनाया हुआ कोट चाहे खुद पहने या चाहे उसका खरीददार उसे पहने, दोनों सूरतों में कोट उपयोग-मूल्य के रूप में काम आता है. कोट तथा उसे पैदा करनेवाले श्रम का संबंध इस बात से भी नहीं बदल जाता है कि कपड़े सीने का काम एक खास धंधा, अर्थात समाजी श्रम-विभाजन की एक स्वतन्त्र शाखा, बन गया है. हजारों वर्ष तक जहाँ कहीं मनुष्य को कपड़े की ज़रुरत महसूस हुई, लोग कपड़े तैयार करते रहे, लेकिन इससे एक भी आदमी दर्जी न बना. किन्तु भौतिक धन के प्रत्येक ऐसे तत्त्व की भांति, जो प्रकृति के स्वयंस्फूर्त उत्पाद नहीं है, कोट और कपड़ा भी अनिवार्य रूप से एक ऐसी उत्पादक क्रिया के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आते हैं, जो एक निश्चित उद्देश्य को सामने रखकर की जाती है और जो प्रकृति की दी हुई विशेष प्रकार की सामग्री को विशेष प्रकार की मानव-आवश्यकताओं के अनुकूल बनाती है.

इसलिए जहाँ तक श्रम उपयोग मूल्य का सृजनकर्त्ता है, यानी जहाँ तक वह उपयोगी श्रम है, वहां तक वह समाज के सभी रूपों से स्वतन्त्र, मनुष्य-जाति के अस्तित्व की आवश्यक शर्त है; यह प्रकृति द्वारा लागू की गयी ऐसी स्थायी आवश्यकता है, जिसके बगैर मनुष्य तथा प्रकृति के बीच कोई भौतिक आदान-प्रदान नहीं हो सकता और इसलिए जिसके बगैर मानव-जीवन भी नहीं हो सकता.

“कोट, कपड़ा, आदि उपयोग-मूल्य, अर्थात पण्यों के ढांचे, दो तत्त्वों के योग होते हैं – पदार्थ और श्रम के. उन पर जो उपयोगी श्रम खर्च किया गया है, यदि आप उसे अलग कर दें, तो एक ऐसा भौतिक आधार-तत्त्व हमेशा बचा रहेगा, जो बिना मनुष्य की सहायता के प्रकृति से मिलता है. मनुष्य केवल प्रकृति की तरह काम कर सकता है, अर्थात वह भी केवल पदार्थ का रूप बदलकर ही काम कर सकता है. [13]

यही नहीं रूप बदलने के इस काम में उसे प्रकृति की शक्तियों से बराबर मदद मिलती है. इस प्रकार हम देखते हैं कि अकेला श्रम भौतिक संपत्ति का, अथवा श्रम के पैदा किये हुए, उपयोग-मूल्यों का एकमात्र स्रोत नहीं है जैसा कि विलियम पैटी ने कहा है, श्रम उसका बाप है और पृथ्वी उसकी माँ है.

आइये, अब उपयोग-मूल्य के रूप में पण्य पर विचार करना बंद करके पण्यों के मूल्य पर विचार करें.

हम यह मानकर चल रहे हैं कि कोट की कीमत कपड़े की दुगुनी है. लेकिन यह महज एक परिमाणात्मक अंतर है, जिससे फ़िलहाल हमारा संबंध नहीं है, तो २० गज कपड़े का अवश्य वही मूल्य होना चाहिए, जो एक कोट का है. जहाँ तक कोट और कपड़ा दोनों मूल्य हैं, वहां तक वे समान तत्त्व की चीजें हैं, वे मूलतया

समान श्रम की दो वस्तुगत अभिव्यक्तियाँ हैं. लेकिन सिलाई और बुनाई गुणात्मक दृष्टि से दो अलग-अलग ढंग के श्रम हैं. फिर भी समाज की कुछ ऐसी दशाएं भी हैं, जिनमें एक ही आदमी सिलाई और बुनाई का काम बारी-बारी से करता है. इस सूरत में श्रम के ये दो रूप एक ही व्यक्ति के श्रम के दो रूपांतर मात्र होते हैं न कि अलग-अलग व्यक्तियों के अलग और निश्चित काम. यह उसी तरह की बात है, जैसे हमारा दर्जी यदि एक रोज कोट बनाता है और दूसरे रोज पतलून, तो उससे एक ही व्यक्ति के श्रम के महज परिवर्तित रूप हमारे सामने आते हैं. इसके अलावा, यह सहज ही दिखाई दे जाता है कि पूंजीवादी समाज में मानव-श्रम का एक निश्चित भाग घटती – बढती मांग के अनुसार कभी सिलाई के रूप में इस्तेमाल होता है और कभी बुनाई के रूप में. यह परिवर्तन संभवतया बिना टकराव के नहीं होता, मगर उसका होना ज़रूरी है.
यदि हम उत्पादक क्रिया के विशेष रूप की ओर, अर्थात श्रम के उपयोगी स्वरूप की ओर, ध्यान न दें, तो उत्पादक क्रिया मानव की श्रम-शक्ति को खर्च करने के सिवा और कुछ नहीं है. सिलाई और बुनाई गुणात्मक दृष्टि से अलग-अलग ढंग की उत्पादक क्रियाएँ हैं, फिर भी उन दोनों में मानव-मस्तिष्क, स्नायुओं और मांस-पेशियों का उत्पादक ढंग से खर्च होता है, और इस अर्थ में वे दोनों मानव-श्रम हैं. वे मावन की श्रम-शक्ति को खर्च करने की महज दो भिन्न पद्धतियाँ हैं. श्रम-शक्ति अपने तमाम रूपान्तरों में एक सी रहती है. पर जाहिर है कि इसके पहले कि वह अलग-अलग ढंग की बहुत सी पद्धतियों में खर्च की जाये, उसका विकास के एक निश्चित स्तर पर पहुंचना ज़रूरी है. लेकिन किसी पण्य का मूल्य अमूर्त मानव-श्रम का, अर्थात सामान्य रूप से मानव-श्रम के खर्च का, प्रतिनिधित्व करता है. और जिस प्रकार समाज में एक सेनापति अथवा एक साहूकार की भूमिका तो महान होती है, लेकिन उसके मुकाबले में मामूली आदमी की भूमिका बहुत अदना ढंग की होती है[14]
ठीक वही बात यहाँ मामूली मानव-श्रम पर भी लागू होती है. मामूली मानव-श्रम साधारण श्रम-शक्ति को अर्थात, उस श्रम-शक्ति को खर्च करता है, जो औसत ढंग से और किसी विशेष विकास के बिना हर साधारण व्यक्ति के शरीर में मौजूद होती है. यह सच है कि साधारण औसत श्रम का रूप अलग-अलग देशों और अलग-अलग कालों में बदलता रहता है, लेकिन किसी भी खास समाज में उसका एक निश्चित रूप होता है. कुशल श्रम की गिनती केवल साधारण श्रम के गहन रूप में, या शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि साधारण श्रम के गुणित रूप में होती है, और कुशल श्रम की एक निश्चित मात्रा साधारण श्रम की उससे अधिक मात्रा के बराबर समझी जाती है. अनुभव बताता है कि हम इस तरह कुशल श्रम को लगातार साधारण श्रम में बदलते रहते हैं. कोई पण्य अत्यंत कुशल श्रम का उत्पाद हो सकता है, लेकिन उसका मूल्य चूँकि साधारण अकुशल श्रम की पैदावार के साथ समीकरण कर देता है, इसलिए वह केवल साधारण अकुशल श्रम की किसी निश्चित मात्रा का ही प्रतिनिधित्व करता है. [15]
अलग-अलग ढंग का श्रम जिन भिन्न-भिन्न अनुपातों में उनके मापदंड के रूप में साधारण अकुशल श्रम में बदला जाता है, वे एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया के द्वारा निर्धारित होते हैं, जो उत्पादकों के पीछे-पीछे चलती रहती है, और इसलिए रीती-रिवाज के ज़रिए निश्चित हुए लगते हैं. विषय को सरल बनाने की दृष्टि से हमारे हर तरह के श्रम को अकुशल, साधारण श्रम मान कर चलेंगे. ऐसे करके हम केवल कुशल श्रम को हर बार साधारण श्रम में बदलने के झंझट से बच जायेंगे.
इसलिए जिस प्रकार हम कोट और कपड़े पर मूल्यों के रूप में विचार करते समय इनके अलग-अलग उपयोग-मूल्यों को अनदेखा कर देते हैं, इसी तरह उस श्रम के साथ भी होता है, जिसका ये मूल्य प्रतिनिधित्व करते हैं, यानी हम इस श्रम के उपयोगी रूपों -सिलाई और बुनाई-के अंदर को अनदेखा कर देते हैं. उपयोग-मूल्यों के रूप में कोट और कपड़ा दो खास तरह की उत्पादक क्रियाओं के साथ वस्त्र और सूत के योग हैं, जबकि दूसरी ओर, मूल्य-कोट और कपड़ा- अविभेदित श्रम के समांग जमाव मात्र हैं; इस कारण, इन

मूल्यों में निहित श्रम का महत्त्व इस बात में नहीं होता कि वस्त्र और सूत के साथ उसका कोई उत्पादक संबंध है, बल्कि उसका महत्त्व केवल इस बात में होता है कि इनमें मानव की श्रम-शक्ति खर्च हुई है. कोट और कपड़ा के रूप में उपयोग मूल्यों के सृजन में सिलाई और बुनाई ठीक इसलिए आवश्यक तत्त्वों का काम करती है कि गुणगत दृष्टि से श्रम के दो प्रकार अलग-अलग हैं; लेकिन सिलाई और बुनाई कोट और कपड़े के मूल्यों का सारतत्त्व केवल उसी हद तक बनती है, जिस हद तक कि श्रम के इन दो प्रकारों को उनके विशेष गुणों से अलग कर दिया जाता है और जिस हद तक कि इन दोनों प्रकारों में मानव-श्रम होने का एक सा गुण मौजूद रहता है.

किन्तु कोट और कपड़ा केवल मूल्य ही नहीं, बल्कि निश्चित परिमाण के मूल्य हैं, और हम यह मानकर चले हैं कि कोट की कीमत दस गज कपडे की कीमत से दुगुनी है. उनके मूल्यों में यह अंतर कहाँ से पैदा होता है? यह इस बात से पैदा होता है कि कपड़े में कोट का केवल आधा श्रम खर्च हुआ है, और चुनांचे वह इस बात से पैदा होता है कि कपडे के उत्पादन के लिए जितने समय तक श्रम-शक्ति खर्च करने की आवश्यकता है, कोट के उत्पादन में उससे दुगुने समय तक श्रम-शक्ति खर्च की गयी होगी.

इसलिए जहाँ उपयोग-मूल्य के संबंध में किसी भी पण्य में निहित श्रम का महत्त्व केवल गुण की दृष्टि से होता है, वहां मूल्य के संबंध में उसका महत्त्व केवल परिमाण की दृष्टि से होता है और उसे पहले विशुद्ध और साधारण मानव-श्रम में बदलना पड़ता है. उपयोग-मूल्य के संबंध में प्रश्न होता है : कैसा और क्या? मूल्य के संबंध में प्रश्न होता है : कितना? कितने समय तक? चूँकि किसी भी पण्य के मूल्य का परिमाण केवल उसमें निहित श्रम की मात्रा का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कुछ खास अनुपातों में तमाम पण्यों के मूल्य समान होंगे.

यदि एक कोट के उत्पादन के लिए आवश्यक तमाम अलग-अलग ढंग के उपयोगी श्रम की उत्पादक शक्ति एक सी रहती है, तो तैयार किये गए कोटों के मूल्यों का जोड़ उनकी संख्या के अनुसार बढ़ता जायेगा. यदि एक कोट x दिनों के श्रम का प्रतिनिधित्व करता है, तो दो कोट २x दिनों के श्रम का प्रतिनिधित्व करेंगे, और इसी तरह यह क्रम आगे चलता जायेगा. लेकिन मान लीजिये कि एक कोट के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम की अवधि दुगुनी या आधी हो जाती है – पहली सूरत में दो कोटों की कीमत अब सिर्फ इतनी ही रह जायेगी, जितनी पहले एक कोट की थी, हालाँकि दोनों सूरतों में एक कोट अब भी उतना ही काम देता है, जितना वह पहले देता था, और उसमें निहित उपयोगी श्रम में वही गुण रहता है, जो उसमें पहले था. लेकिन कोट के उत्पादन पर खर्च किये गए श्रम की मात्रा बदल गयी है.

उपयोग-मूल्यों के परिमाण में वृद्धि होने का मतलब है भौतिक धन में वृद्धि होना. दो कोट दो आदमी पहन सकते हैं, एक कोट केवल एक ही आदमी पहन सकता है. फिर भी यह संभव है कि भौतिक धन के परिमाण में वृद्धि होने के साथ-साथ उसके मूल्य के परिमाण में कमी आ जाये. इस विरोधी गति का मूल श्रम के दोहरे स्वरूप में है. उत्पादक शक्ति का, जाहिर है, किसी मूर्त उपयोगी रूप के श्रम से संबंध होता है; कोई खास तरह की उत्पादक क्रिया किसी निश्चित समय में कितनी कारगर होती है, यह उसकी उत्पादिता पर निर्भर करता है. इसलिए उपयोगी श्रम की उत्पादिता जितनी बढती या घटती है, उसी अनुपात में वह ज्यादा या कम बहुतायत के साथ उत्पाद तैयार करता है. दूसरी ओर, इस उत्पादिता में जो परिवर्तन होते हैं, उनका उस श्रम पर कोई असर नहीं पड़ता, जिसका प्रतिनिधित्व मूल्य करता है. चूँकि उत्पादक शक्ति श्रम के मूर्त, उपयोगी रूपों का गुण है, इसलिए जाहिर है कि जब हम श्रम को उसके मूर्त, उपयोगी रूपों से अलग कर लेते हैं, तब उत्पादक शक्ति का उस श्रम पर प्रभाव पड़ना बंद हो जाता है. इसलिए उत्पादक शक्ति में चाहे जैसा परिवर्तन हो जाये, एक सा श्रम यदि सामान अवधि तक किया जायेगा, तो उससे सदा समान परिमाण में मूल्य उत्पन्न होगा. लेकिन समान अवधि में उससे उपयोग-मूल्य भिन्न-भिन्न परिमाणों में पैदा होंगे, यदि

उत्पादक शक्ति बढ़ गयी होगी, तो अधिक परिमाण में उपयोग-मूल्य पैदा होंगे, और यदि वह घट गयी होगी, तो कम परिमाण में. उत्पादक शक्ति का जो परिवर्तन श्रम की फलप्रदता को और उसके परिणामस्वरूप उस श्रम से पैदा होनेवाले उपयोग-मूल्यों के परिमाण को बढा देता है, वही उपयोग-मूल्यों के इस बढे हुए परिमाण के कुल मूल्य को घटा देगा, बशर्ते कि इस परिवर्तन से इन उपयोग-मूल्यों के उत्पादन के लिए आवश्यक कुल श्रम-काल कम हो गया हो. ऐसा ही विपरीत क्रम में भी.

एक ओर, शरीरक्रियात्मक दृष्टि से हर प्रकार का श्रम मानव की श्रम-शक्ति को खर्च करना है, और एक जैसे, अमूर्त मानव-श्रम के रूप में वह पण्यों के मूल्य को उत्पन्न करता है और उसका निर्माण करता है. दूसरी ओर, हर प्रकार का श्रम मानव की श्रम-शक्ति को एक खास ढंग से और एक निश्चित उद्देश्य को सामने रखकर खर्च करना है, और अपने इस रूप में, यानि मूर्त, उपयोगी श्रम के रूप में, वह उपयोगी-मूल्यों को पैदा करता है. [16]

अनुभाग- 3 मूल्य का रूप अथवा विनिमय-मूल्य

पण्य दुनिया में उपयोग-मूल्यों, वस्तुओं अथवा जिंसों के रूप में आते हैं, जैसे लोहा, कपड़ा, अनाज, इत्यादि. यह उनका साधारण, सादा, शारीरिक रूप है. लेकिन वे यदि पण्य हैं, तो सिर्फ इसलिए कि वे दोहरी किस्म की चीजें हैं; वे उपयोग की वस्तुएं भी हैं और उसके साथ-साथ मूल्य के आधान भी. इसलिए ये चीजें केवल उसी हद तक पण्य के रूप में प्रकट होती हैं, अथवा पण्यों का रूप धारण करती है, जिस हद तक कि उनके दो रूप होते हैं : एक – भौतिक अथवा प्राकृतिक रूप, और दूसरा – मूल्य-रूप.

पण्यों के मूल्य की वास्तविकता इस दृष्टि से श्रीमती क्विकली से भिन्न है कि हम नहीं जानते कि "उसे कहाँ से पकड़ें". पण्यों का मूल्य उनके सारतत्त्व की अनगढ भौतिकता का बिलकुल उल्टा होता है, पदार्थ का एक परमाणु भी उसकी बनावट में प्रवेश नहीं कर पाता. किसी भी पण्य को ले जीजिये और फिर उसे चाहे जितनी बार इधर-उधर घुमाकर देख लीजिये, लेकिन जिस हद तक वह मूल्य है, उस हद तक उसे पकड़ पाना असंभव प्रतीत होता है. किन्तु यदि हम यह याद रखें कि पण्यों के मूल्य की केवल सामाजिक वास्तविकता होती है, और यह वास्तविकता वे केवल उसी हद तक प्राप्त करते है, जिस हद तक कि वे एक समान सामाजिक तत्त्व की, अर्थात मानव-श्रम की, अभिव्यंजनाएं अथवा मूर्त रूप हैं, तो उससे स्वभाविकत: यह निष्कर्ष निकलता है कि मूल्य केवल पण्य के साथ पण्य के सामाजिक संबंध के रूप में अपने को प्रकट कर सकता है. असल में तो हमने विनिमय-मूल्य से, अथवा पण्यों के विनिमय-संबंध से, ही अपनी यह खोज आरंभ की थी, जिसका उद्देश्य उस मूल्य का पता लगाना था, जो इस संबंध के पीछे छिपा हुआ है. अब हमें फिर उस रूप की तरफ लौटना चाहिए, जिस रूप में मूल्य पहली बार हमारे सामने आया था.

हर आदमी, यदि वह और कुछ नहीं जानता, तो इतना ज़रूर जानता है कि सभी पण्यों के लिए सामान्य मूल्य-रूप होता है, जो उनके उपयोग-मूल्यों के नाना प्रकार के भौतिक रूपों से बहुत भिन्न होता है. मेरा मतलब पण्यों के द्रव्य-रूप से है. लेकिन यहाँ हमारे सामने एक ऐसा काम आकर खडा हो जाता है, जिसे बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र में आज तक कभी हाथ में नहीं लिया है. वह काम यह है कि इस द्रव्य-रूप की उत्पत्ति कैसे हुई, इसका पता लगाया जाये, और पण्यों के मूल्य-संबंध में व्यक्त मूल्य किस प्रकार अपनी सबसे सरल, लगभग अदृश्य रूपरेखा से आरंभ करके आँखों को चकाचौंध कर देनेवाले द्रव्य-रूप तक विकास करता है, इसे समझा जाये. यदि हम यह काम कर लेंगे, तो द्रव्य के रूप में जो पहेली हमारे सामने पेश है, उसे भी लगे हाथों बूझ डालेंगे.

सबसे सरल संबंध, जाहिर है, वह है, जो किसी पण्य और दूसरी तरह के किसी अन्य पण्य के बीच कायम होता है. इसलिए दो पण्यों के बीच का संबंध हमारे सामने एक पण्य के मूल्य की सबसे सरल अभिव्यंजना को पेश कर देता है.

मूल्यों का प्राथमिक अथवा सांयोजिक रूप

मूल्य की अभिव्यंजना के दो ध्रुव : सापेक्ष रूप और समतुल्य

क). मूल्य का प्राथमिक अथवा सांयोजिक रूप
क पण्य का x परिमाण = ख पण्य का y परिमाण, अथवा
क पण्य के x परिमाण का मूल्य है ख का y परिमाण |
२० गज कपड़ा = एक कोट, अथवा
२० गज कपड़े का मूल्य है १ कोट |
१) मूल्य की अभिव्यंजना के दो
ध्रुव : सापेक्ष रूप और समतुल्य-रूप
मूल्य के रूप का सार रहस्य इस प्राथमिक रूप में छिपा हुआ है. इसलिए इस रूप का विश्लेषण करना ही हमारी असली कठनाई है.
यहाँ दो भिन्न प्रकार के पण्य (हमारी उदाहरण में कपड़ा और कोट), स्पष्ट ही, दो अलग-अलग भूमिकाएँ अदा करते हैं. कपड़ा अपना मूल्य कोट में व्यक्त करता है; कोट उस सामग्री का काम करता है, जिसमें यह मूल्य व्यक्त होता है. कपड़े की भूमिका सक्रिय है, कोट की निष्क्रिय. कपड़े का मूल्य सापेक्ष मूल्य के रूप में सामने आता है, या यूं कहिये कि वह सापेक्ष रूप में प्रकट होता है. कोट समतुल्य का काम करता है, या यूं कहिये कि वह समतुल्य-रूप में प्रकट होता है.
सापेक्ष-रूप और समतुल्य-रूप मूल्य की अभिव्यंजना के दो घनिष्ठ रूप से संबंधित, एक दूसरे पर निर्भर और पृथक तत्त्व हैं, लेकिन साथ ही साथ वे एक दूसरे के अपवर्जक, विरोधी छोर, यानी एक ही अभिव्यंजना के दो ध्रुव भी है. ये दो रूप क्रमशः उन दो भिन्न पण्यों में बँट गए हैं, जिनको इस अभिव्यंजना ने एक दूसरे के संबंध में ला खडा किया है. कपड़े के मूल्य को कपड़े के रूप में व्यक्त करना संभव नहीं है. २० गज कपड़ा = २० गज कपड़ा – यह मूल्य की अभिव्यंजना नहीं है. इसके विपरीत, इस प्रकार का समीकरण तो केवल इतना ही बताता है कि २० कपड़ा २० गज कपड़े के सिवा – या कपड़ा नामक उपयोग-मूल्य की एक निष्चित मात्रा के सिवा – और कुछ नहीं है. अतएव कपड़े का मूल्य केवल सापेक्ष ढंग से ही – अर्थात किसी और पण्य के रूप में ही – व्यक्त किया जा सकता है. इसलिए कपड़े के मूल्य का सापेक्ष रूप पहले से यह मानकर चलता है कि कोई और पण्य भी – यहाँ पर कोट – समतुल्य के रूप में मौजूद है. दूसरी ओर, जो पण्य समतुल्य के रूप में सामने आता है, वह साथ ही सापेक्ष रूप नहीं धारण कर सकता. जिसका मूल्य व्यक्त किया जा रहा है, वह दूसरा पण्य नहीं है. उसकी भूमिका तो बस पहले पण्य का मूल्य व्यक्त करने वाली सामग्री बनना है.
इसमें संदेह नहीं है कि २० गज कपड़ा = १ कोट, या २० गज कपड़े का मूल्य है १ कोट, इस अभिव्यंजना से यह उल्टा संबंध भी प्रकट होता है कि १ कोट = २० गज कपड़ा, या १ कोट का मूल्य है २० गज कपड़ा. लेकिन तब मुझे कोट का मूल्य सापेक्ष ढंग से व्यक्त करने के लिए समीकरण को उलटना पड़ेगा, और जैसे ही मैं यह करता हूँ, वैसे ही कोट के बजाय कपड़ा समतुल्य बन जाता है. अतएव, मूल्य की एक अभिव्यंजना

में कोई एक पण्य एक साथ दोनों रूप धारण नहीं कर सकता. इन रूपों की ध्रुवता ही उनको परस्पर अपवर्जी बना देती है.
इसलिए कोई पण्य सापेक्ष रूप धारण करेगा या उसका उल्टा समतुल्य-रूप, यह पूर्णतया इस बात पर निर्भर करता है कि मूल्य की अभिव्यंजना में संयोगवश उसकी कौन सी स्थिति है – अर्थात वह ऐसा पण्य है, जिसका मूल्य व्यक्त किया जा रहा है, या ऐसा पण्य जिसके रूप में मूल्य व्यक्त किया जा रहा है.

मूल्य का सापेक्ष रूप

क) इस रूप की प्रकृति और उसका अर्थ

इसका पता लगाने के लिए कि किसी पण्य के मूल्य की प्राथमिक अभिव्यंजना दो पण्यों के मूल्य-संबंध में कैसे छिपी रहती है, हमें सबसे पहले इस मूल्य-संबंध को उसके परिमाणात्मक पहलू से बिलकुल अलग करके उस पर विचार करना चाहिए. साधारणतया इससे उल्टी कार्यविधि अपनाई जाती है, और मूल्य-संबंध को दो अलग-अलग ढंग के पण्यों की उन निश्चित मात्राओं के अनुपात के सिवा और कुछ नहीं समझा जाता, जिनको एक दूसरे के बराबर माना जाता है. बहुधा ये भुला दिया जाता है कि अलग-अलग वस्तुयों के पैमाने की तुलना केवल उसी सूरत में की जाती है, जब ये परिमाण एक इकाई के रूप में व्यक्त किये गए हों. इस प्रकार की किसी इकाई की अभिव्यंजनाओं के नाते ही यह परिमाण एक श्रेणी के होते हैं, और इसलिए उनको एक मापदंड से मापा जा सकता है. [17]
चाहे २० गज कपडा = १ कोट, या = २० कोट , या = x कोट, अर्थात कपडे की किसी निश्चित मात्रा का मूल्य चाहे तो थोड़े से कोट हों अथवा बहुत सारे कोट, ऐसे हर कथन का यह मतलब होता है कि मूल्य के परिमाणों के रूप में कपडा और कोट एक ही इकाई की अभिव्यंजनाएँ हैं, एक ही किस्म की चीजें हैं. कपडा = कोट समीकरण का यही मूल आधार है.
लेकिन ये दोनों जिन्सें, जिनके गुण की एकरूपता को हम इस प्रकार मान कर चल रहे हैं, एकसी भूमिका नहीं अदा करती. मूल्य केवल कपडे का ही व्यक्त होता है. और किस तरह? कोट का अपने समतुल्य के रूप में हवाला देकर, यानी ऐसी चीज के रूप में, जिसके साथ उसका विनिमय किया जा सकता है. इस संबंध में कोट मूल्य के अस्तित्व की अवस्था है, वह मूल्य का मूर्त रूप है, क्योंकि केवल इसी शक्ल में वह चीज है, जो कपडा भी है. दूसरी ओर, कपडे का खुद अपना मूल्य सामने आता है, स्वतन्त्र अभिव्यक्ति प्राप्त करता है, क्योंकि मूल्य होने के कारण ही तो उसका समान मूल्य की चीज के रूप में कोट के साथ मुकाबला किया जा सकता है या कोट के साथ उसका विनिमय किया जा सकता है. हम रसायनविज्ञान से एक उदाहरण लें. बुतिरिक एसिड प्रोपिल फोर्मेट से अलग पदार्थ है. फिर भी वे दोनों एक से रासायनिक तत्त्वों से बने हैं – कार्बन (C), हाइड्रोजन (H) और आक्सिजन (O), और दोनों में इन तत्त्वों का अनुपात भी एक सा है $C_2H_8O_2$. अब हम यदि ब्यूटीरिक एसिड की प्रोपिल फोर्मेट के साथ बराबरी करते हैं, तो इस संबंध में एक तो प्रोपिल फोर्मेट $C_2H_8O_2$ के अस्तित्व की एक अवस्था मात्र होगा, और दूसरे हमारे कहने का यह मतलब होगा कि ब्यूटीरिक एसिड भी $C_2H_8O_2$ से बना है. इसलिए दो पदार्थों की इस तरह बराबरी करके हम उनकी रासायनिक बनावट को तो व्यक्त करेंगे, मगर उनके अलग-अलग शारीरिक रूपों की उपेक्षा कर देंगे.
अगर हम यह कहते हैं कि मूल्यों के रूप में पण्य मानव-श्रम के जमाव मात्र हैं, तो यह सच है कि हम अपने विश्लेषण द्वारा उन्हें अमूर्त रूप में बदल डालते हैं, लेकिन इस मूल्य को हम इन पण्यों के भौतिक रूप के अलावा कोई और रूप नहीं देते. किन्तु एक पण्य का दूसरे पण्य के साथ मूल्य का संबंध स्थापित होता

है, तब यह बात नहीं होती. यहाँ एक पण्य दूसरे पण्य के साथ अपने संबंध के कारण ही मूल्य के रूप में सामने आता है.
कोट को कपड़े का समतुल्य बनाकर हम कोट में निहित श्रम के बराबर मान लेते हैं. अब यह बात तो सच है कि सिलाई जिसमें कोट तैयार होता है, बुनाई से जिससे कि कपड़ा तैयार होता है, भिन्न प्रकार का एक उपयोगी मूर्त श्रम है. लेकिन जब हम सिलाई का बुनाई के साथ समीकरण करते हैं तो हम सिलाई को उस चीज में बदल डालते हैं, जो दोनों प्रकार के श्रम में सचमुच समान है, अर्थात हम उसे मानव-श्रम के उनके समान स्वरूप में परिणत कर देते हैं. अतः इस घुमावदार ढंग से यही तथ्य व्यक्त किया जाता है कि जहाँ तक बुने का श्रम भी मूल्य बनाता है, वहन तक उसमें और सिलाई के श्रम में कोई भेद नहीं है, और इसलिए वह भी अमूर्त मानव-श्रम है. यह केवल अलग-अलग ढंग के पण्यों की समतुल्यता की अभिव्यंजना ही है, जो मूल्य का सृजन करने वाले श्रम के विशिष्ट स्वरूप को सामने ले आती है, और यह काम वह अलग-अलग ढंग के पण्यों में निहित अलग-अलग प्रकार के श्रम को सचमुच अमूर्त मानव-श्रम होने के उनके समान गुण में परिणत करके करती है.[17a]
लेकिन कपड़े का मूल्य जिस श्रम से बना है उसके विशिष्ट स्वरूप की अभिव्यंजना से आगे भी किसी की आवश्यकता है. मानव की गतिमान श्रम-शक्ति, अथवा मानव-श्रम मूल्य को उत्पन्न करता है, किन्तु वह स्वयं मूल्य नहीं होता. वह केवल अपनी घनीभूत अवस्था में ही मूल्य बनता है, यानी जब वह किसी वस्तु में रूपायित होता है. मानव-श्रम के जमाव के रूप में कपड़े के मूल्य को व्यक्त करने के लिए जरूरी है कि वह मूल्य इस प्रकार व्यक्त किया जाये, जैसे उसका वस्तुगत अस्तित्व हो, जैसे वह कोई ऐसी चीज हो, जो खुद भौतिक रूप से कपडे से भिन्न, किन्तु जो फिर भी कपड़े में तथा अन्य सभी पण्यों में सामान्य रूप से पाई जाती है. समस्या यहीं पर हल हो जाती है.
जब मूल्य के समीकरण में कोट समतुल्य की स्थिति में होता है, तब गुणात्मक दृष्टि से वह इसलिए कपड़े के बराबर होता है और उसी तरह की एक चीज समझा जाता है, क्योंकि वह मूल्य है. इस स्थिति में वह एक ऐसी चीज होता है, जिसमें हम मूल्य के सिवा और कुछ नहीं देखते या जिसका इन्द्रियगोचर भौतिक रूप मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है. फिर भी कोट खुद- यानी कोट नामक पण्य का शरीर -महज एक उपयोग-मूल्य होता है. कपड़े का जो पहला टुकडा मिले, उसे उठाकर देखिये, वह आपसे यह नहीं कहता कि वह मूल्य है. उसी तरह कोट भी कोट के रूप में यह नहीं कहता. इससे पता चलता है कि कोट का कपडे के साथ मूल्य का संबंध स्थापित हो जाने पर उसका महत्त्व बढ़ जाता है, जबकि इस संबंध के आभाव में उसका यह महत्त्व नहीं होता. यह ठीक उसी तरह की बात है, जैसे बहुत से आदमियों का, जब वे सादे कपड़े पहने हुए होते हैं, तब कोई खास महत्त्व नहीं होता, पर जब वे भड़कीली वर्दी पहनकर अकड़कर चलने लगते हैं, तो उनका महत्त्व बढ़ जाता है.
कोट के उत्पादन में सिलाई के रूप में मानव की श्रम-शक्ति का अवश्य ही वास्तविक खर्च किया गया होगा. इसलिए उसमें मानव-श्रम संचित है. इस दृष्टि से कोट मूल्य का अधन है, हालाँकि वह घिसकर तार-तार हो जाने पर भी इस सचाई को बहर झलकने नहीं देता. और मूल्य के समीकरण में कपड़े के समतुल्य के रूप में उसका अस्तित्व केवल इसी दृष्टि से होता है, और इसलिए उसका महत्त्व मूर्तिमान मूल्य के रूप में, अथवा एक ऐसी वस्तु के रूप में होता है, जो खुद मूल्य है. उदाहरण के लिए क उस वक्त तक ख के लिए "महामहिम सम्राट" नहीं हो सकता, जब तक कि ख की नज़रों में "सम्राट की महिमा" उसी समय क का भौतिक रूप न धारण कर ले, और जो इससे भी बड़ी बात है, जब तक कि "सम्राट की महिमा" प्रजा के हर नए पिता के सिंहासन पर असं होने के साथ अपना चेहरा-मोहरा, बाल और अन्य बहुत सी चीजें न बदलती जाये.

इसलिए मूल्य के उस समीकरण में, जिसमें कोट कपडे का समतुल्य है, कोट मूल्य के रूप की भूमिका अदा करता है. कपडा नामक पण्य का मूल्य कोट नामक पानी के भौतिक रूप द्वारा व्यक्त होता है, एक पानी का मूल्य दूसरे पानी के उपयोग-मूल्य द्वारा व्यक्त होता है. उपयोग-मूल्य के रूप में कपड़ा कोट से स्पष्टत: भिन्न है, पर मूल्य के रूप में वह वाही है, जो कोट है, और अब उसकी शक्ल कोट की हो जाती है. इस प्रकार कपड़ा एक ऐसा मूल्य-रूप प्राप्त कर लेता है, जो उसके भौतिक रूप से भिन्न है. वह मूल्य है, यह सत्य कोट के साथ उसकी समानता से प्रकट होता है, जैसे किसी ईसाई का भेद जैसा स्वभाव भगवन के मेमने के साथ उसके सदृश्य द्वारा दिखाया जाता है.

तो इस तरह हम देखते हैं कि पण्यों के मूल्यों का विश्लेषण करके हम अब तक जो कुछ मालूम कर चुके हैं, वह सब कपड़ा खुद, जैसे ही वह एक दूसरे पण्य के – यानी कोट के – संपर्क में आता है, वैसे ही हमें बताने लगता है. मुश्किल सिर्फ यही है कि वह अपने विचार केवल उस एकमात्र भाषा में व्यक्त करता है, जिससे वह परिचित है, अर्थात पण्यों की भाषा में. हमें यह बतलाने के लिए कि खुद उसके मूल्य को श्रम ने मानव-श्रम के अपने अमूर्त रूप में उत्पन्न किया है,ल वह कहता है कि जिस हद तक कोट की वाही कीमत है, जो कपड़े की है, और इसलिए जिस हद तक वह मूल्य है, उस हद तक वह भी उसी श्रम से बना है, जिससे कपड़ा बना है. हमें यह बतलाने के लिए कि मूल्य के रूप में उसकी उदात्त वास्तविकता वह नहीं है, जो उसके बकाराम के शरीर की है, वह कहता है कि मूल्य की शक्ल कोट की है और इसलिए जिस हद तक कपड़ा मूल्य है, उस हद तक वह और कोट ऐसे हैं, जैसे मटर के दो दाने. यहाँ हम यह भी बता दें कि पण्यों की भाषा की, यहूदियों की इब्रानी के अलावा, और भी बहुत सी कमोबेश सही बोलियाँ हैं. उदाहरण के लिए, जर्मन शब्द “Wertsein”, अर्थात “कीमत होना” , रोमांस भाषाओं की क्रियाओं “valere”, “valer”, “valoir” की अपेक्षा कुछ कम जोर के साथ यह विचार व्यक्त करता है कि पण्य क के साथ पण्य ख का समीकरण करना पण्य क का अपना मूल्य प्रकट करने का खास ढंग है. Paris vault bien une messe! [पेरिस की कीमत इतनी जरूर है कि एक बार ख्त्रीष्ट-भोज की प्रार्थना में शामिल हो लिया जाये !]

इसलिए हमारे समीकरण में मूल्य का जो संबंध व्यक्त किया गया है, उसके द्वारा पण्य ख का भौतिक रूप पण्य क का मूल्य-रूप बन जाता है, अथवा पण्य ख का शरीर पण्य क के लिए दर्पण का काम करता है. [18] मूल्य in propria persona [मूर्त मूल्य] के रूप में, अथ्ब्वा उस पदार्थ के रूप में, जिसकी शक्ल में मानव-श्रम ने मूर्त रूप धारण किया है, पण्य ख के साथ संबंध स्थापित करके पण्य क उपयोग-मूल्य ख को उस तत्त्व में बदल डालता है, जिसमें वह अपना- खुद क का – मूल्य व्यक्त करता है. क का मूल्य जब इस प्रकार ख के उपयोग-मूल्य के रूप में व्यक्त होता है, तब वह सापेक्ष मूल्य का रूप धारण कर लेता है.

ख) सापेक्ष मूल्य का परिमाणात्मक निर्धारण

हर वह पण्य, जिसका हमें मूल्य व्यक्त करना होता है, एक निश्चित मात्रा की उपयोगी वस्तु होता है, जैसे १५ बुशेल अनाज या १०० पाउंड कहवा. और किसी भी पण्य की एक खास मात्रा में मानव-श्रम की एक निश्चित मात्रा होती है. इसलिए मूल्य-रूप को न केवल सामान्य-तौर पर मूल्य को व्यक्त करना चाहिए, बल्कि उसे किसी निश्चित मात्रा के मूल्य को भी व्यक्त करना चाहिए. अतएव पण्य ख के साथ पण्य क का – या कोट के साथ कपड़े का – जो मूल्य संबंध है, उसमें कोट न सिर्फ आम तौर पर मूल्य के रूप में गुणात्मक दृष्टि से कपड़े के बराबर हो जाता है, बल्कि कोट की एक निश्चित मात्रा (१ कोट) कपड़े की एक निश्चित मात्रा (२० गज) की समतुल्य बन जाती है.

२० गज कपड़ा = १ कोट या २० गज कपड़े की कीमत है एक कोट – इस समीकरण का मतलब यह है कि दोनों में मूल्य-तत्त्व (संपीडित श्रम) की एक सी मात्रा निहित है, अर्थात दोनों पण्यों में श्रम की बराबर मात्रा अथवा बराबर श्रम-काल खर्च हुआ है. लेकिन बुनाई या सिलाई के श्रम की उत्पादिता में आनेवाले प्रत्येक परिवर्तन के साथ २० गज कपड़े या १ कोट के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम-काल बदलता रहता है. अब हमें इसपर विचार करना है कि ऐसे परिवर्तनों का मूल्य की सापेक्ष अभिव्यंजना के परिमाणात्मक पहलू पर क्या प्रभाव पड़ता है.

१) माना कि कोट का मूल्य स्थिर रहता है, [19]

मगर कपड़े का मूल्य बदल जाता है. जैसे कि यदि सन पैदा करनेवाली धरती की उर्वरता नष्ट हो जाये और उसके परिणामस्वरूप सन के बने कपड़े के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम-काल दुगना हो जाये, तो उस कपड़े का मूल्य भी दुगना हो जायेगा. तब इस समीकरण के बजाय कि २० गज कपडा = १ कोट, यह समीकरण होगा कि २० गज कपडा = दो कोट, क्योंकि २० गज कपड़े में अब जितना श्रम-काल निहित होगा, १ कोट में महज उसका आधा होगा. दूसरी तरफ, यदि मान लीजिए कि उन्नत ढंग के करघे की बदौलत यह श्रम-काल आधा रह जाता है, तो कपड़े का मूल्य भी आधा रह जायेगा. और तब यह समीकरण होगा कि २० गज कपडा =१/२ कोट. अतएव यदि पण्य ख का मूल्य स्थिर मान लिया जाये, तो पण्य क का सापेक्ष मूल्य – अर्थात पण्य ख के रूप में व्यक्त किया गया उसका मूल्य – क के मूल्य के अनुलोम अनुपात में घटता-बढ़ता है.

२) मान लीजिये कि कपड़े का मूल्य स्थिर रहता है, मगर कोट का मूल्य बदल जाता है. ऐसी परिस्थिति में , उदाहरण के लिए, यदि ऊन की पैदावार अच्छी न होने के कारण कोट के उत्पादन के लिए अवशयक्त श्रम-काल पहले से दुगना हो जाता है, तो इस समीकरण के बदले कि २० गज कपडा = १ कोट, समीकरण यह हो जायेगा कि २० गज कपड़ा = १/२ कोट. दूसरी तरफ, यदि कोट का मूल्य आधा रह जाता है, तो समीकरण यह हो जायेगा कि २० गज कपडा = २ कोट. इसलिए, यदि पण्य क का मूल्य स्थिर रहता है, तो पण्य ख के रूप में व्यक्त होनेवाला उसका सापेक्ष मूल्य ख के मूल्य के प्रतिलोम अनुपात में घटता-बढ़ता है.

यदि हम १ और २ दृष्टान्तों में दिए गए अलग-अलग उदाहरणों की तुलना करें, तो हम देखेंगे कि सापेक्ष मूल्य के परिमाण में सर्वथा विरोधी कारणों से एक सा परिवर्तन हो सकता है. इस प्रकार जब २० गज कपड़ा = १ कोट का समीकरण २० गज कपडा = २ कोट में बदलता है, तो उसके दो कारण हो सकते हैं – या तो यह कि कपड़े का मूल्य पहले से दुगुना हो गया है, या यह कि कोट का मूल्य पहले से आधा रह गया है. और जब वही समीकरण २० गज कपडा =१/२ का रूप लेता है, तब उसके भी दो कारण हो सकते हैं – या तो यह कि कपड़े का मूल्य पहले से आधा रह गया है, या यह कि कोट का मूल्य पहले से दुगुना हो गया है.

३) मान लीजिये कि कपड़े तथा कोट के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम-काल की क्रमश: मात्राएँ एक ही दिशा और एक से अनुपात में बदलती हैं. इस सूरत में कपड़े के तथा कोट के मूल्य चाहे जितने बदल जाएँ, पर २० गज कपड़ा १ कोट के ही बराबर रहता है. पर जैसे ही उनकी किसी तीसरे पण्य से तुलना की जाती है, जिसका मूल्य स्थिर रहता है, वैसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका मूल्य बदल गया है. यदि तमाम पण्यों के मूल्य एक साथ और एक ही अनुपात में घट जाएँ या बढ़ जाएँ, तो उनके सापेक्ष मूल्यों में कोई परिवर्तन न होगा. उनके मूल्य में होनेवाला वास्तविक परिवर्तन इस बात से जाहिर होगा कि एक निश्चित समय में अब पहले से कितने कम या ज्यादा परिमाण में पण्य तैयार होते हैं.

४) संभव है कि कपड़े के तथा कोट के उत्पादन के लिए क्रमश: आवश्यक श्रम-काल और उसके फलस्वरूप इन पण्यों का मूल्य एक साथ और एक ही दिशा में बदले, लेकिन दोनों के बदलने की गति समान न हो, या

संभव है कि दोनों उल्टी दिशाओं में बदले या किसी और ढंग से बदलें. इस तरह की जितनी अलग-अलग सूरतें मुमकिन हैं, उनका किसी पण्य के सापेक्ष मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह १, २ और ३ के परिणामों से निष्कर्ष निकालकर जाना जा सकता है.

अतएव, मूल्य के परिमाण में होनेवाले वास्तविक परिवर्तन अपनी सापेक्ष अभिव्यंजना में – अर्थात सापेक्ष मूल्य का परिमाण व्यक्त करनेवाले समीकरण में – न तो असंदिग्ध रूप में प्रतिबिंबित होते हैं और न ही सम्पूर्ण रूप में. किसी पण्य का मूल्य स्थिर रहते हुए भी उसका सापेक्ष मूल्य बदल सकता है. यह भी संभव है कि उसका मूल्य बदलते रहने पर भी उसका सापेक्ष मूल्य स्थिर रहे. और आखिरी बात यह है कि मूल्य के परिमाण में तथा उसकी सापेक्ष अभिव्यंजना में एक साथ होनेवाले परिवर्तनों के लिए मात्रा की दृष्टि से एक जैसा होना कतई ज़रूरी नहीं है. [20]

३) मूल्य का समतुल्य रूप

हम देख चुकें हैं कि जब पण्य क (कपड़ा) अपने से भिन्न प्रकार के पण्य (कोट) के उपयोग-मूल्य के रूप में अपना मूल्य प्रकट करता है, तब वह उसके साथ-साथ कुछ दूसरे पण्य पर भी मूल्य के एक विशिष्ट रूप की, अर्थात मूल्य के समतुल्य रूप की, छाप अंकित कर देता है. कपड़ा नामक पण्य मूल्य धारण करने के अपने गुण को इस तथ्य के द्वारा प्रकट करता है कि कोट को उसके अपने भौतिक रूप से भिन्न कोई मूल्य रूप धारण किये बगैर ही कपडे के बराबर कर दिया जाता है. इसलिए यह तथ्य कि कपडे में मूल्य है, इस कथन द्वारा व्यक्त किया जाता है कि कोट का उसके साथ सीधा विनिमय हो सकता है. अतएव, जब हम यह कहते हैं कि कोई पण्य समतुल्य रूप में है, तब हम वास्तव में यह तथ्य व्यक्त करते हैं कि अन्य पण्यों के साथ उसका सीधा विनिमय हो सकता है.

जब कोट जैसा कोई पण्य कपडे जैसे किसी दूसरे पण्य के समतुल्य का काम करता है और जब इसके परिणामस्वरूप कोटों में यह विशेष गुण पैदा हो जाता है कि उनका कपडे के साथ सीधा विनिमय किया जा सकता है, तब उससे हमें यह बिलकुल पता नहीं चलता कि दोनों का किस अनुपात में विनिमय हो सकता है. क्योंकि कपडे के मूल्य का परिमाण दिया हुआ है, इसलिए यह अनुपात कोट के मूल्य पर निर्भर करता है. चाहे कोट समतुल्य का काम करे और कपडा सापेक्ष मूल्य का, या चाहे कपडा समतुल्य का काम करे और कोट सापेक्ष मूल्य का, कोट के मूल्य का परिमाण हर हालत में उसके मूल्य रूप से स्वतन्त्र इस बात से निर्धारित होता है कि उसके उत्पादन के लिए कितना श्रम-कल आवश्यक है. लेकिन जब कभी कोट मूल्य के समीकरण में समतुल्य की स्थिति में आ जाता है, तब उसका मूल्य कोई परिमाणात्मक अभिव्यंजना नहीं प्राप्त करता; इसके विपरीत तब कोट नामक पण्य केवल किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा के रूप में सामने आता है.

मिसाल के लिए, ४० गज कपडे की कीमत है – क्या? २ कोट. कोट नामक पण्य यहाँ चूँकि समतुल्य की भूमिका अदा करता है, चूँकि यहाँ कपडे के विपरीत कोट नामक उपयोग-मूल्य के मूर्त रूप के तौर पर सामने आता है, इसलिए कोटों की एक निश्चित संख्या कपडे में पाए जाने वाले मूल्य की एक निश्चित मात्रा को व्यक्त करने के लिए काफी होती है. इसलिए दो कोट ४० गज कपडे के मूल्य की मात्रा को व्यक्त कर सकते हैं, लेकिन वे खुद अपने मूल्य की मात्रा को कभी व्यक्त नहीं कर सकते. इस तथ्य को सतही तौर पर समझने के कारण कि मूल्य के समीकरण में समतुल्य सदा केवल किसी वस्तु के , किसी उपयोग-मूल्य के, साधारण परिमाण के रूप में आता है, बेली, अपने अनेक पूर्वगामियों तथा अनुगामियों की तरह, इस गलतफहमी में फंस गए हैं कि मूल्य की अभिव्यंजना में केवल एक परिमाणात्मक संबंध ही प्रकट होता है.

सचाई यह है कि किसी पण्य द्वारा समतुल्य का काम किये जाने में उसके अपने मूल्य का कोई परिमाणात्मक निर्धारण नहीं होता है.

समतुल्य के रूप पर विचार करते हुए जो पहली विलक्षणता हमारी ध्यान खींचती है, वह यह है कि उपयोग-मूल्य अपनी उलटी चीज -मूल्य — की अभिव्यक्ति का रूप, इन्द्रियगम्य रूप बन जाता है.

पण्य का भौतिक रूप उसका मूल्य-रूप बन जाता है. लेकिन यह बात अच्छी तरह समझ लीजिये कि ख नामक किसी पण्य के साथ यह quit pro quo [अदल-बदल] केवल उसी वक्त होता है, जब क नामक कोई दूसरा पण्य उसके साथ मूल्य का संबंध स्थापित करता है; और तब भी वह अदल-बदल केवल इस संबंध की सीमाओं के भीतर ही होता है. कोई भी पण्य चूँकि खुद अपने मूल्य की अभिव्यंजना नहीं बन सकता और इस तरह खुद अपने भौतिक रूप को अपने मूल्य की अभिव्यंजना नहीं बना सकता, इसलिए हरेक पण्य को अपने समतुल्य के रूप में किसी और पण्य को चुनना पड़ता है और उस दूसरे पण्य के उपयोग-मूल्य को, अर्थात उसके भौतिक रूप को, अपने मूल्य के रूप में स्वीकार करना पड़ता है.

भौतिक पदार्थों के रूप में, यानी उपयोग-मूल्यों के रूप में, पण्यों के लिए हम जिन मापों का प्रयोग करते हैं, उनमें से एक के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी. मिसरी का कूजा चूँकि एक वस्तु है, इसलिए वह भारी होता है और उसमें वजन होता है. लेकिन इस वजन को हम न तो देख सकते हैं और न छू सकते हैं. तब हम लोहे के कुछ ऐसे टुकड़े इस्तेमाल करते हैं, जिनका वजन पहले से मालूम है. जैसे मिसरी का कूजा वजन की अभिव्यक्ति का रूप नहीं है, वैसे ही लोहा भी लोहे के तौर पर वजन की अभिव्यक्ति का रूप नहीं है. फिर भी जब हम मिसरी के कूजे को एक निश्चित वजन के रूप में व्यक्त करना चाहते हैं, तब हम उसका लोहे के साथ वजन का संबंध स्थापित कर देते हैं. इस संबंध में लोहा एक ऐसी वस्तु का काम करता है, जो वजन के सिवा और किसी चीज का प्रतिनिधित्व नहीं करती. इसलिए लोहे की एक निश्चित मात्रा मिसरी के कूजे के वजन की माप का काम करती है और मिसरी के कूजे के संबंध में मूर्तिमान वजन- अथवा वजन की अभिव्यक्ति के रूप – का प्रतिनिधित्व करती है. लोहा यह भूमिका केवल इस संबंध के भीतर ही अदा करता है, जो मिसरी या कोई और ऐसी वस्तु, जिसका वजन मालूम करना हो, लोहे के साथ स्थापित करती है. यदि ये दोनों वस्तुएं वजनदार न होती, तो वे आपस में यह संबंध स्थापित नहीं कर सकती थीं. और इसलिए तब एक वस्तु दूसरी के वजन को व्यक्त करने का काम नहीं कर सकती थी. जब हम इन दोनों वस्तुओं को तराजू के पलडों पर रख देते हैं, तब हम देखते हैं कि सचमुच वजन के रूप में वे दोनों एक ही हैं, और इसलिए जब उनकों सही अनुपात में लिया जाता है, तब दोनों का एक-साथ वजन होता है. जिस प्रकार लोहा नामक पदार्थ, वजन की माप के रूप में, मिसरी के कूजे के संबंध में केवल वजन का ही प्रतिनिधित्व करता है, ठीक उसी प्रकार मूल्य की हमारी अभिव्यंजना में कोट नामक भौतिक वस्तु कपडे के संबंध में केवल मूल्य का ही प्रतिनिधित्व करती है.

किन्तु यह तुलना यहाँ समाप्त हो जाती है. मिसरी के कूजे के वजन को व्यक्त करते हुए लोहा दोनों वस्तुओं में समान रूप में पाए जाने वाले एक स्वाभाविक गुण – अर्थात वजन – का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन कपडे के मूल्य को व्यक्त करते हुए, कोट दोनों वस्तुओं के एक अस्वाभाविक गुण का , एक विशुद्ध समाजी चीज का – अर्थात उनके मूल्य का – प्रतिनिधित्व करता है.

किसी भी पण्य के – उदाहरण के लिए, कपडे के – मूल्य का सापेक्ष रूप चूँकि उस पण्य के मूल्य को इस तरह व्यक्त करता है, जैसे वह उसके भौतिक तत्त्व तथा गुणों के सर्वथा भिन्न हो, यानी जैसे वह, मिसाल के लिए, कोट के समान हो, इसलिए खुद इस प्रकार की अभिव्यंजना से भी हमें यह संकेत मिलता है कि उसकी तह में कोई सामाजिक संबंध विद्यमान है. समतुल्य-रूप में इसके ठीक उलटी बात होती है. इस रूप का सारतत्त्व भी यह है कि भौतिक पण्य खुद – मिसाल के लिए, कोट – जिस हालत में वह है, उसी हालत में

मूल्य को व्यक्त करता हैं, और स्वयं प्रकृति ने उसे मूल्य का रूप दे रखा है. जाहिर है, यह बात केवल तभी तक सच रहती है जब तक मूल्य का वह संबंध कायम रहता है, जिसमें कोट कपडे के समतुल्य की स्थिति में है.[21]

लेकिन किसी भी चीज के गुण चूँकि दूसरी चीज के साथ उसके संबंधों का फल नहीं होते बल्कि इन संबंधों द्वारा केवल अपने को प्रकट करते हैं, इसलिए ऐसा मालूम होता है कि जिस तरह कोट को वजनदार होने या हमें गर्म रखने का गुण प्रकृति से मिला है, उसी तरह उसका समतुल्य-रूप – यानी दूसरे पण्यों के साथ विनिमेयता का गुण भी उसे प्रकृति से प्राप्त हुआ है. इसीलिए समतुल्य-रूप की शक्ल एक पहेली जैसी है, जिसे बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्री उस वक्त तक नहीं देख पाता जब तक कि यह रूप पूरी तरह विकसित होकर द्रव्य की शक्ल में उसके सामने नहीं आ जाता. तब वह सोने और चाँदी के रहस्यमय स्वरूप को उनकी जगह पर आँखों को कम चंकाचौन्द करने वाले पण्यों की प्रतिस्थापना करके और ऐसे तमाम पण्यों की सूची नित नए आत्मसंतोष के साथ गिनकर रफादफा करने की कोशिश करता है, जिन्होंने कभी न कभी समतुल्य की भूमिका अदा की है. उसे इस बात का लेशमात्र भी आभास नहीं होता कि मूल्य की सबसे सरल अभिव्यंजना – मसलन, २० गज कपडा = १ कोट – ने समतुल्य-रूप की पहेली को पहले ही से हमारे बूझने के लिए पेश कर दिया है.

समतुल्य का काम करनेवाले पण्य का शरीर अमूर्त मानव-श्रम मूर्त के रूप के तौर पर सामने आता है, और इसके साथ-साथ वह किसी विशिष्ट ढंग से उपयोगी मूर्त श्रम का उत्पाद होता है..अतः यह मूर्त श्रम अमूर्त मानव-श्रम को व्यक्त करने का माध्यम बन जाता है. यदि एक ओर, कोट की गिनती इसके सिवा और किसी रूप में नहीं होती है कि वह अमूर्त मानव-श्रम का मूर्त रूप है, तो, दूसरी ओर , कोट में सिलाई का जो श्रम सचमुच संचित हुआ है, उसकी इससे सिवा और किसी तरह गिनती नहीं होती कि उसके रूप में यह अमूर्त मानव-श्रम मूर्त हुआ है. कपडे के मूल्य की अभिव्यंजना में सिलाई के श्रम की उपयोगिता वस्त्र सीने में नहीं बल्कि एक ऐसी वस्तु तैयार करने में है, जिसको देखते ही हम तुंरत यह पहचान लेते हैं कि वह मूल्य है. और इसलिए श्रम का जमाव है, किन्तु ऐसे श्रम का जमाव है जिसका उस श्रम के साथ कोई भेद नहीं किया जा सकता जो कपडे के रूप में मूर्त हुआ है. मूल्य के ऐसे दर्पण का काम करने के लिए यह जरूरी है कि सिलाई के श्रम में आमतौर पर मानव-श्रम होने के उसके अमूर्त गुण के सिवा और कोई चीज न झलकने पाए.

जैसे बुनाई में, वैसे ही सिलाई में भी मानव की श्रम- शक्ति खर्च होती है. इसलिए दोनों में ही मानव-श्रम होने का एक सामान्य गुण विद्यमान है, और इसलिए यह मुमकिन है कि कुछ परस्थितियों में, जैसे कि मूल्य के उत्पादन में, उनपर केवल इसी दृष्टि से विचार किया जाये. इसमें कोई रहस्य की बात नहीं है. लेकिन मूल्य की अभिव्यंजना में नक्शा एकदम उल्ट जाता है. मिसाल के लिए, इस तथ्य को किस प्रकार व्यक्त किया जाये कि जब बुनाई का श्रम कपडे का मूल्य पैदा करता है तब वह बुनाई का श्रम होने के नाते नहीं, बल्कि मानव-श्रम होने की अपनी सामान्य गुण के नाते यह मूल्य पैदा करता है? इस तथ्य को व्यक्त करने का सरल उपाय यह है कि बुनाई के श्रम के मुकाबले में वह दूसरे प्रकार का मूर्त-श्रम (इस उदाहरण में सिलाई का श्रम) पेश कर दिया जाये, जो बुनाई के श्रम के उत्पाद का समतुल्य पैदा करता है. जिस प्रकार कोट अपने भौतिक रूप में मूल्य की प्रत्यक्ष अभिव्यंजना बन गया था, उसी प्रकार अब सिलाई का श्रम – श्रम का एक मूर्त रूप – सामान्य मानव-श्रम का प्रत्यक्ष और इन्द्रियगम्य साकार रूप बनकर सामने आता है.

अतएव समतुल्य रूप की दूसरी विलक्षणता यह है कि मूर्त श्रम वह रूप बन जाता है, जिसके द्वारा उसका उल्टा, अमूर्त मानव-श्रम अपने को प्रकट करता है.

लेकिन यह मूर्त श्रम – हमारे उदाहरण में सिलाई का श्रम -चूँकि अविभेदित मानव-श्रम की श्रेणी में गिना जाता है और सीधे अविभेदित मानव-श्रम माना जाता है, इसलिए वह अन्य किसी भी प्रकार के श्रम के सर्वसम है और इसलिए कपडे में निहित श्रम के भी सर्वसम है. परिणामत यद्यपि पण्य का उत्पादन करनेवाले अन्य सभी श्रमों की भांति यह भी निजी तौर पर काम करनेवाले व्यक्तियों का श्रम होता है. तथापि यह साथ ही प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक प्रकृति वाला श्रम ही होता है. इसी कारण उसके परिणामस्वरूप एक ऐसा उत्पाद तैयार होता है, जिसका दूसरे पण्यों से सीधा विनिमय हो सकता है. अतएव, यह समतुल्य रूप की तीसरी विलक्षणता है कि निजी तौर पर काम करनेवाले व्यक्तियों का श्रम अपनी उलटी चीज का – यानी सीधे-सीधे सामाजिक श्रम का – रूप धारण कर लेता है.

यदि हम उस महान विचारक की तरफ लौट चलें, जिसने चिंतन, समाज एवं प्रकृति के इतने बहुत से रूपों का और उनमें मूल्य के रूप का भी सबसे पहले विश्लेषण किया था, तो समतुल्य-रूप की अंतिम दो विलक्षणताएँ ज्यादा अच्छी तरह हमारी समझ में आ जाएँगी. मेरा मतलब अरस्तु से है.

सबसे पहले अरस्तु स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित करते हैं की पण्यों का द्रव्य-रूप मूल्य के सरल रूप – अर्थात एक पण्य के मूल्य की किसी दूसरे पण्य के रूप में अभिव्यंजना – की केवल विकसित अवस्था है. कारण, अरस्तु ने लिखा है कि

५ पलंग = १ मकान और

५ पलंग = इतना द्रव्य – इनमें कोई अंतर नहीं है.

अरस्तु ने आगे कहा है कि मूल्य का वह संबंध, जिससे यह अभिव्यंजना उत्पन्न होती है है, यह जरूरी बना देता है कि मकान को गुणात्मक दृष्टि से पलंग के बराबर समझा जाये, और इस तरह उनको बराबर समझे बिना इन दो स्पष्ट रूप से भिन्न वस्तुओं की एक दूसरी के साथ एक ही मापदंड से मापी जानेवाली मात्राओं की भांति तुलना की जा सकती है. उन्होंने लिखा है : “विनिमय समानता के बिना नहीं हो सकता, और समानता उस वक्त तक नहीं हो सकती, जब तक कि दोनों वस्तुएं एक ही मापदंड से न मापी जा सकती हों.” लेकिन यहाँ आकर वह ठहर जाते हैं और मूल्य के रूप का आगे विश्लेषण करना बंद कर देते हैं. उनके शब्द हैं : किन्तु वास्तव में यह असंभव हैं कि इतनी असमान वस्तुएं एक से मापदंड से मापी जा सकती हों,” – अर्थात वे गुणात्मक दृष्टि से बराबर हों. इस प्रकार का समानीकरण इन वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति के लिए एक परायी चीज है और इसलिए केवल “व्यवहारिक उद्देश्य के लिए इस्तेमाल की गयी कामचलाऊ तरकीब” ही हो सकता है.

इस तरह, अरस्तु ने खुद हमें बता दिया है कि किस चीज ने उनको आगे विश्लेषण नहीं करने दिया; वह चीज थी मूल्य की किसी भी प्रकार की धारणा का अभाव. पलंगों और मकान , दोनों में वह कौनसी समान वस्तु है , वह कौनसा समान तत्त्व है, जिसके कारण यह संभव होता है कि पलंगों का मूल्य मकान के द्वारा व्यक्त हो जाये ? अरस्तु का कहना है कि ऐसी कोई वस्तु “असल में हो ही नहीं सकती”. मकान की पलंगों से तुलना करने पर मकान उस हद तक ज़रूर पलंगों के समान किसी चीज का प्रतिनिधित्व करता है, जिस हद तक कि वह उस चीज का प्रतिनिधित्व करता है, जो पलंगों तथा मकान, दोनों में सचमुच बराबर है. और वह चीज है मानव-श्रम.

लेकिन एक महत्वपूर्ण तथ्य था, जिसने अरस्तु के यह समझने में बाधा डाली कि पण्यों में मूल्य का आरोपण करना हर प्रकार के श्रम को समान मानव-श्रम के रूप में और इसलिए समान गुण के श्रम के रूप में व्यक्त करने का एक ढंग है. यूनानी समाज दासता पर आधारित था, और इसलिए उसका स्वाभाविक आधार था मनुष्यों तथा उनकी श्रम-शक्तियों की असमानता. मूल्य की अभिव्यंजना का रहस्य यह है कि हर प्रकार का श्रम क्योंकि और जिस हद तक साधारण मानव-श्रम होता है, इसलिए और उस हद तक वह

समान और समतुल्य होता है. लेकिन यह रहस्य उस वक्त तक नहीं समझा जा सकता, जब तक कि मानव-समता का विचार बहुमान्य धारणा जैसी स्थिरता नहीं प्राप्त कर लेता. किन्तु यह केवल उस समाज में संभव है, जिसमें श्रम के उत्पाद का अधिकतर भाग पण्यों का रूप धारण कर लेता है और इसके परिणामस्वरूप जिसमें मनुष्य और मनुष्य का संबंध पण्यों के मालिकों के बीच के बीच जो संबंध होता है, वह हो जाता है. अरस्तू की प्रतिभा का चमत्कार इसी बात में प्रकट होता है कि उन्होंने पण्यों के मूल्यों के अभिव्यक्ति में समानता का सम्बन्ध देखा. वह जिस समाज में रहते थे, केवल उसकी विशेष परिस्थितियों ने ही उन्हें यह पता नहीं लगाने दिया कि इस समानता की तह में 'सचमुच" क्या था.

मूल्य के प्राथमिक रूप पर उसकी समग्रता में विचार

पण्य के मूल्य का प्राथमिक रूप भिन्न प्रकार के किसी दूसरे पण्य के साथ उसके मूल्य-संबंध को व्यक्त करने वाले समीकरण में निहित है, अर्थात वह किसी दूसरे पण्य के साथ उसके विनिमय-संबंध में निहित है. पण्य क का मूल्य गुणात्मक दृष्टि के इस तथ्य द्वारा व्यक्त होता है कि पण्य ख का उसके साथ सीधा विनिमय हो सकता है. उसका मूल्य परिमाणात्मक दृष्टि से इस तथ्य द्वारा व्यक्त होता है कि पण्य ख का उसके साथ सीधा विनिमय हो सकता है. उसका मूल्य परिमाणात्मक दृष्टि से इस तथ्य द्वारा व्यक्त होता है कि ख की एक निश्चित मात्रा का क की एक निश्चित मात्रा के साथ विनिमय हो सकता है.दूसरे शब्दों में, विनिमय-मूल्य का रूप धारण करके किसी भी पण्य का मूल्य स्वतन्त्र एवं निश्चित अभिव्यंजना प्राप्त कर लेता है. जब इस अध्याय के आरंभ में हमने आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हुए यह कहा था कि पण्य उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य दोनों होता है, तब ठीक-ठीक कहा जाये, तो हम गलत थे. पण्य उपयोग मूल्य अथवा उपयोगी वस्तु और मूल्य होता है. इस दोहरी चीज के रूप में, जोकि वह है, वह उसी वक्त प्रकट हो जाता है, जब उसका मूल्य एक स्वतन्त्र रूप धारण कर लेता है, अर्थात जब उसका मूल्य विनिमय-मूल्य का रूप धारण कर लेता है. लेकिन अलग पड़े रहते हुए वह यह रूप कभी धारण नहीं करता. यह रूप वह केवल उसी समय धारण करता है, जब उसका अपने से भिन्न प्रकार के किसी दूसरे पण्य के साथ मूल्य का – अथवा मूल्य का – संबंध स्थापित होता है. एक बार यह समझ लेने के बाद यदि ऊपर दी गयी शब्दावली का प्रयोग किया जाये, तो कोई बुराई नहीं है; वह केवल संकेत-चिह्न का काम करेगी.
हमारे विश्लेषण से सिद्ध हो चुका है कि पण्य के मूल्य का रूप, अथवा अभिव्यंजना, मूल्य की प्रकृति से उत्पन होती है न कि मूल्य तथा उसका परिमाण विनिमय-मूल्य के रूप में अपने अभिव्यंजना से उत्पन होते हैं. किन्तु यह बात जिस प्रकार वाणिज्यवादियों के कट्टर विरोधी बस्तिया जैसे स्वतन्त्र व्यापार के आधुनिक एजेंटों को, उसी प्रकार खुद वाणिज्यवादियों और उनके आधुनिक भक्त फेरिये, गानिल्ह , [22] आदि को भी भ्रम में डाले हुए है. वाणिज्यवादी मूल्य की अभिव्यंजना के गुणात्मक पहलू पर और इसलिए पण्यों के समतुल्य रूप पर खास जोर देते हैं, जो द्रव्य की शक्ल में अपना पूर्ण विकास करता है. दूसरी और, स्वतन्त्र व्यापार के आधुनिक फेरी वाले, जिनके लिए किसी भी दाम पर अपनी जिंस से पिंड छुडाना जरूरी है, सबसे ज्यादा जोर मूल्य के सापेक्ष रूप से परिमाणात्मक पहलू पर देते हैं. इसलिए, उनके लिए मूल्य का और मूल्य के परिमाण का अस्तित्व पण्यों के विनिमय-संबंध द्वारा उनकी अभिव्यक्ति के सिवा और कहीं नहीं है, यानी उनके लिए वे रोज के बाज़ार भावों के सिवा और कहीं नहीं है. मैक्लियोड, जिन्होंने लोम्बार्ड स्ट्रीट के गड़बड़ विचारों को अत्यंत पंडिताऊ पोषक पहनाने का काम अपने कन्धों पर लिया है, अन्धविश्वासी वाणिज्यवादियों और स्वतन्त्र व्यापार के जाग्रत फेरी वालों के बीच एक सफल वर्णसंकर हैं.

ख के साथ क के मूल्य-संबंध को व्यक्त करने वाले समीकरण में क के मूल्य की ख के रूप में जो अभिव्यंजना निहित है उससे यह बात स्पष्ट हो गयी है कि इस संबंध के अन्तर्गत क का भौतिक रूप केवल एक उपयोग-मूल्य की तरह सामने आता है और ख का भौतिक रूप केवल मूल्य के रूप अथवा पहलू की तरह सामने आता है. इस तरह, हरेक पण्य के भीतर उपयोग-मूल्य और मूल्य के बीच जो विरोध अथवा वैमष्य निहित है, वह इस समय स्पष्ट रूप में सामने आ जाता है, जब दो पण्यों के बीच इस प्रकार का संबंध स्थापित कर दिया जाता है कि जिस पण्य का मूल्य व्यक्त करना होता है, वह प्रत्यक्ष ढंग से महज उपयोग-मूल्य की तरह सामने आता है, और जिस पण्य के रूप में इस मूल्य को व्यक्त करना होता है, वह प्रत्यक्ष ढंग से महज विनिमय-मूल्य की तरह सामने आता है. इसलिए किसी भी पण्य के मूल्य का प्राथमिक रूप वह है, जिसमें के उस पण्य में निहित उपयोग-मूल्य और मूल्य का वैमष्य प्रकट होता है.

श्रम का प्रत्येक उत्पाद समाज की सभी अवस्थाओं में उपयोग-मूल्य होता है. किन्तु यह उत्पाद सामाजिक विकास के एक खास ऐतिहासिक युग के आरंभ हो जाने पर ही पण्य बनता है, अर्थात जब वह युग आरंभ हो जाता है जिसमें किसी भी उपयोगी चीज के उत्पादन पर खर्च किया गया श्रम उस चीज के एक वस्तुगत गुण के रूप में – यानी उसके मूल्य के रूप में – व्यक्त होने लगता है. अतएव इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राथमिक मूल्य रूप ही वह आदिम रूप है, जिसमें श्रम का उत्पाद इतिहास के पहले-पहल पण्य की तरह सामने आता है, और ऐसा उत्पाद मूल्य रूप के विकास के साथ-साथ धीरे-धीरे पण्य का रूप धारण करता जाता है.

मूल्य के प्राथमिक रूप के दोष पहली दृष्टि में ही दिखाई दे जाते हैं, वह महज एक बीजाणु है. और दाम-रूप की परिपक्वता प्राप्त करने के लिए इसका अनेक रूपान्तरणों में से गुजरना ज़रूरी है.

पण्य क के मूल्य की किसी भी अन्य पण्य ख के रूप में अभिव्यंजना केवल क के उपयोग-मूल्य से उसके मूल्य के भेद को स्पष्ट करती है और इसलिए वह क का महज एक ही अन्य पण्य ख से विनिमय-संबंध स्थापित करती है. लेकिन यह अभिव्यंजना सभी पण्यों के साथ क की गुणात्मक समता और परिमाणात्मक अनुपातिता व्यक्त करने से अभी बहुत दूर है. हर पण्य के प्राथमिक सापेक्ष मूल्य-रूप के अनुरूप किसी और पण का अकेला समतुल्य-रूप होता है. अतएव, कपडे के मूल्य की सापेक्ष अभिव्यंजना में कोट अकेले एक पण्य के संबंध में यानी अकेले कपडे के संबंध में यानी अकेले कपडे के संबंध में- ही समतुल्य का रूप धारण करता है, या यूं कहिये कि सीधे तौर पर केवल कपडे के साथ ही विनिमय करने के योग्य बनता है. इस सबके बावजूद मूल्य का प्राथमिक रूप एक सहज संक्रमण द्वारा अधिक पूर्ण रूप में बदल जाता है. यह सच है कि प्राथमिक रूप के द्वारा पण्य क का मूल्य केवल एक ही अन्य पण्य के रूप में व्यक्त होता है. परन्तु यह एक पण्य कोट, लोहा, अनाज या और किसी भी तरह का पण्य हो सकता है. इसलिए एक ही पण्य के मूल्य की अनेक प्राथमिक अभिव्यन्जनाएँ हो सकती हैं. [22a]

यह केवल इस पर निर्भर करता है कि उसका किस पण्य के साथ मूल्य-संबंध स्थापित किया गया है. उसकी समस्त संभव अभिव्यंजनाओं की संख्या केवल इस बात से सिमित होती है कि उस पण्य से भिन्न और कितने प्रकार के पण्य हैं. अतएव, पण्य क के मूल्य की एक अकेली अभिव्यंजना को उस मूल्य की अनेक अलग-अलग प्राथमिक अभिव्यंजनाओं के एक पूरे क्रम में परिवर्तित किया जा सकता है, और इस क्रम को किसी भी सीमा तक लम्बा किया जा सकता है.

मूल्य का सम्पूर्ण अथवा विस्तारित रूप

क पण्य की z मात्रा = ख पण्य की u मात्रा, या = ग पण्य की v मात्रा, या = घ पण्य की w मात्रा, या = च पण्य की x मात्रा, या = इत्यादि. (२० गज कपडा = १ कोट या = १० पाउंड चाय, या = ४० पाउंड कहवा, या = १ क्वार्टर अनाज, या = २ ओउंस सोना, या = १/२ टन लोहा, या = इत्यादि.)

१) मूल्य का विस्तारित सापेक्ष रूप

किसी भी पण्य का – उदाहरण के लिए, कपडे का – मूल्य अब पण्यों की दुनिया के अन्य असंख्य घटकों के रूप में व्यक्त होता है. दूसरा हर पण्य अब कपड़े के मूल्य का दर्पण बन जाता है. [23]

इस प्रकार यह मूल्य पहली बार अपने सच्चे रूप में – अर्थात अविभेदित मानव-श्रम के जमाव के रूप में – सामने आता है. कारण की इस मूल्य को पैदा करने में जो श्रम खर्च हुआ है, वह अब साफ-साफ उस श्रम के रूप में प्रकट होता है, जो हर प्रकार के एनी मानव-श्रम के बराबर है, चाहे वह श्रम बुनी का श्रम हो, या हल चलाने का, या खान खोदने का, या और किसी प्रकार का, और चाहे वह श्रम कोटों के रूप में अथवा अनाज के रूप में, लोहे के रूप में, या सोने के रूप में मूर्त होता हो. अब कपडे का अपने मूल्य-रूप के फलस्वरूप अन्य प्रकार के किसी एक पण्य के साथ नहीं, बल्कि पण्यों की पूरी दुनिया के साथ एक सामाजिक संबंध स्थापित हो जाता है. पण्य के रूप में कपडा इस दुनिया का नागरिक है. साथ ही मूल्य के समीकरणों का या अंतहीन क्रम बताता है कि जहाँ तक किसी पण्य के मूल्य का संबंध है, इसका कोई महत्त्व नहीं है कि वह किस खास रूप या प्रकार के उपयोग-मूल्य में प्रकट होता है.

२० गज कपड़ा = १ कोट, इस पहले रूप में, जब तक कुछ और न निकले, बहुत संभव है कि यह एक विशुद्ध रूप से सांयोगिक घटना हो कि इन दो पण्यों का निश्चित मात्राओं में विनिमय होता है. इसके विपरीत दूसरे रूप में वह आधार हमें तुरंत दिखाई दे जाता है, जो इस घटना को निर्धारित करता है और जो इस सांयोगिक रूप से बुनियादी तौर पर भिन्न है. कपड़े का मूल्य परिमाण में अपरिवर्तित रहता है, चाहे वह कोटों के रूप में व्यक्त किया गया हो, या कहवे के, या लोहे के या असंख्य अन्य पण्यों के रूप में, जिनके अलग-अलग मालिकों की संख्या भी उतनी ही बड़ी होगी. दो पण्यों के दो मालिकों के बीच संयोग से स्थापित हो जानेवाला संबंध अब गायब हो जाता है. यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पण्यों का विनिमय उनके मूल्य के परिमाण का नियमन नहीं करता, बल्कि इसके विपरीत उनके मूल्य का परिमाण उनके विनिमय के अनुपातों का नियंत्रण करता है.

२) विशिष्ट समतुल्य-रूप

कपड़े के मूल्य की अभिव्यंजना में कोट, चाय, अनाज, लोहा, आदि प्रत्येक पण्य समतुल्य के रूप में और इसलिए एक ऐसी वस्तु के रूप में सामने आता है, जो मूल्य है. इनमें से प्रत्येक पण्य का भौतिक रूप अब बहुत से समतुल्य-रूपों में से एक विशिष्ट समतुल्य-रूप की तरह सामने आता है. इसी तरह इन अलग-अलग पण्यों में निहित नाना प्रकार का मूर्त उपयोगी श्रम अब केवल इन नाना रूपों में साकार या प्रकट होनेवाला अविभेदित मानव-श्रम माना जाता है.

मूल्य के सम्पूर्ण अथवा विस्तारित रूप के दोष

मूल्य की सापेक्ष अभिव्यंजना सबसे पहले तो इसलिए अपूर्ण है कि उसको व्यक्त करने वाला क्रम अंतहीन होता है. हर नए प्रकार का पण्य तैयार होने के साथ-साथ मूल्य की एक नयी अभिव्यंजना की सामग्री तैयार हो जाती है और इस तरह मूल्य का प्रत्येक समीकरण जिस श्रृंखला की एक बड़ी मात्रा है, वह श्रंखला किस भी क्षण और लंबी खिंच सकती है. दूसरे, यह मूल्य की बहुत सी असंबन्द्ध और स्वतन्त्र अभिव्यंजनाओं से

जुड़कर बनी मानो बहुरंगी पच्चीकारी होती है. और आखिरी बात यह है कि यदि, जैसा कि वास्तव में होता है, बारी-बारी से हर पण्य का सापेक्ष मूल्य इस विस्तारित रूप में व्यक्त होता है, तो उनमें से प्रत्येक के लिए एक भिन्न सापेक्ष मूल्य तैयार हो जाता है, जो मूल्य की अभिव्यंजनाओं का एक अंतहीन क्रम होता है.
विस्तारित सापेक्ष मूल्य-रूप के दोष उसके समतुल्य-रूप में झलकते हैं. चूंकि हर अलग-अलग पण्य का भौतिक रूप असंख्य अन्य विशिष्ट समतुल्य-रूपों में से एक होता है, इसलिए कुल मिलकर हमारे पास खंडित समतुल्य-रूपों के सिवा और कुछ नहीं बचाता, जिनमें से प्रत्येक दूसरों का अपवर्जन कर देता है. इस प्रकार प्रत्येक विशिष्ट समतुल्य में निहित विशिष्ट प्रकार का मूर्त, उपयोगी श्रम भी केवल एक खास प्रकार के श्रम के रूप में ही सामने आता है, और इसलिए वह सामान्य मानव-श्रम के सर्वत: पूर्ण प्रतिनिधि के रूप में सामने नहीं आता. यह तो सच है कि सामान्य मानव-श्रम अपने नाना प्रकार के विशिष्ट, मूर्त रूपों की संपूर्णता में प्रयाप्त अभिव्यक्ति प्राप्त कर लेता है. परंतु इस सूरत में एक अंतहीन क्रम के रूप में उसकी अभिव्यंजना सदा अपूर्ण रहती है और उसमें एकता का अभाव रहता है.
किन्तु विस्तारित सापेक्ष मूल्य-रूप पहले प्रकार की प्राथमिक सापेक्ष अभिव्यंजनाओं – अथवा समीकरणों – के जोड़ के सिवा और कुछ नहीं है, जैसे :
२० गज कपड़ा = १ कोट,
२० गज कपड़ा = १० पाउंड चाय, इत्यादि.
इनमें से प्रत्येक में उल्टा समीकरण भी निहित है :
१ कोट = २० गज कपड़ा,
१० पाउंड चाय – २० गज कपड़ा, इत्यादि.
सच तो यह है कि जब कोई व्यक्ति अपने कपड़े का बहुत से दूसरे पण्यों के साथ विनिमय करता है और, इस तरह, अपने कपडे के मूल्य को अन्य पण्यों की एक श्रृंखला के रूप में व्यक्त करता है, तब इससे लाजिमी तौर पर यह नतीजा भी निकलता है कि अन्य सब पण्यों के विभिन्न मालिक उन पण्यों का कपडे के साथ विनिमय करते हैं और इसलिए अपने विभिन्न पण्यों के मूल्यों को उस एक ही पण्य के रूप में – यानि कपडों के रूप में – व्यक्त करते हैं. अतएव यदि हम इस श्रृंखला -अर्थात २० गज कपड़ा = १ कोट, या = १० पाउंड चाय, इत्यादि – को उलट दें, अर्थात यदि हम उस विपरीत संबंध को व्यक्त करें, जो कि इस श्रृंखला में पहले से निहित है, तो हमें मूल्य का सामान्य रूप मिल जाता है.

मूल्य का सामान्य रूप

ग) मूल्य का सामान्य रूप	
१ कोट १० पाउंड चाय ४० पाउंड कहवा १ क्वार्टर अनाज २ औंस सोना १/२ टन लोहा क माल x परिमाण, इत्यादि	= २० गज कपडा

मूल्य के रूप का बदला हुआ स्वरूप

अब तमाम पण्य अपना मूल्य (१) सरल रूप में व्यक्त करते हैं, क्योंकि सबका मूल्य केवल एक पण्य के रूप में व्यक्त किया जाता है, और (२) एकता के साथ व्यक्त करते हैं, क्योंकि सबका मूल्य किसी एक पण्य के रूप में व्यक्त किया जाता है. मूल्य का यह रूप सब पण्यों के लिए प्राथमिक और एकसा है, इसलिए वह सामान्य रूप है.

क और ख रूप केवल इस योग्य थे कि किसी एक पण्य के मूल्य को उसके उपयोग-मूल्य – अथवा भौतिक रूप – से भिन्न किसी चीज के रूप में व्यक्त कर दें.

पहले रूप क से ऐसे समीकरण मिलते थे, जैसे १ कोट =बराबर २० गज कपडा, १० पाउंड चाय = १/२ टन लोहा. कोट के मूल्य का कपडे के और चाय के मूल्य का लोहे के साथ समीकरण कर दिया जाता है. लेकिन कपडे के साथ और फिर लोहे के साथ समीकरण किया जाना इतना ही भिन्न होता है, जितने भिन्न कपडा और लोहा है. जाहिर है कि यह रूप व्यावहारिक दृष्टि से केवल बिलकुल शुरू में ही पाया जा सकता है, जबकि श्रम से पैदा होने वाली वस्तुएं संयोगिक और यदा-कदा होनेवाले विनिमय के द्वारा ही पण्यों का रूप धारण करती हैं.

दूसरा रूप ख पहले रूप की तुलना में किसी पण्य के उपयोग-मूल्य से उसके मूल्य के अंतर को अधिक पूरी तरह स्पष्ट करता है, क्योंकि उसमें कोट का मूल्य तमाम संभव रूपों में कोट के भौतिक रूप के मुकाबले में रखा जाता है; उसका कपडे, लोहे, चाय, संक्षेप में यह कि इस कोट को छोड़कर बाकी हर चीज के साथ समीकरण किया जाता है. दूसरी और, मूल्य की किसी ऐसी सामान्य अभिव्यंजना का, जो सब पण्यों के लिए साझी हो, सीधे तौर पर अपवर्जन कर दिया जाता है, क्योंकि प्रत्येक पण्य के मूल्य के समीकरण में अब बाकी सब पण्य केवल समतुल्य के रूप में सामने आते हैं. मूल्य के विस्तारित रूप का पहली बार वास्तव में उस वक्त जन्म होता है, जब श्रम के किसी खास उत्पाद का, जैसे ढोरों का, अपवाद-रूप में नहीं, बल्कि आदतन नाना प्रकार के दूसरे पण्यों से विनिमय होने लगता है.

मूल्य का तीसरा और सबसे बाद में विकसित होने वाला रूप पण्यों की पूरी दुनिया के मूल्यों को केवल एक पण्य के रूप में – यानी कपडे के रूप में – व्यक्त करता है, जो इस काम के लिए अलग कर दिया जाता है. इस प्रकार यह तीसरा रूप इन तमाम पण्यों के मूल्यों को कपडे के साथ उनकी समता की शक्ल में प्रस्तुत करता है. अब चूँकि हर पण्य के मूल्य का कपडे के साथ समीकरण किया जाता है, इसलिए यह मूल्य न केवल उसके अपने उपयोग-मूल्य से, बल्कि आमतौर पर सभी उपयोग-मूल्यों से भिन्न हो जाता है, और इसी तथ्य के फलस्वरूप यह उस तत्त्व के रूप में व्यक्त होता है, जो सब पण्यों में समान रूप से मौजूद है. इस रूप के द्वारा पण्यों का पहली बार कारगर ढंग से मूल्यों के रूप में एक दूसरे के साथ संबंध स्थापित होता है या यों कहिए कि वे विनिमय मूल्य के रूप में सामने लाये जाते हैं.

शुरू के पहले दो रूपों में प्रत्येक पण्य का मूल्य या तो उससे भिन्न प्रकार किसी एक पण्य के रूप में या ऐसे बहुत से पण्यों के रूप में व्यक्त होता है. दोनों सूरतों में हर अलग-अलग पण्य का, यों कहिए, अपना निजी काम है कि अपने मूल्य के लिए किसी अभिव्यंजना की तलाश करे और यह काम वह बाकी सब पण्यों के मदद के बिना पूरा करता है. ये बाकी पण्य उस पण्य के सबंध में समतुल्य की निष्क्रिय भूमिका अदा करते हैं. मूल्य का सामान्य रूप ग पण्यों की पूरी दुनिया की संयुक्त कार्रवाई के फलस्वरूप अस्तित्व में आता है, और उसके अस्तित्व में आने का यही एकमात्र ढंग है. कोई भी पण्य अपने मूल्य की सामान्य अभिव्यंजना केवल इसी दशा में प्राप्त कर सकता है, जब उसके साथ-साथ बाकी सब पण्य भी एक समतुल्य के रूप में अपने मूल्य को व्यक्त करें, और हर नए पण्य को भी उनका अनुसरण करते हुए अनिवार्य रूप से

ऐसा ही करना होता है,. इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मूल्यों के रूप में पण्यों का अस्तित्व क्योंकि विशुद्ध “समाजी अस्तित्व” होता है, इसलिए यह “समाजी अस्तित्व” केवल उनके तमाम सामाजिक संबंधों की सम्पूर्णता के द्वारा ही व्यक्त हो सकता है और इसलिए उनके मूल्य का रूप कोई सामजिक तौर पर मान्य रूप होना चाहिए.

सब पण्यों को चूँकि अब कपडे के बराबर किया जाता है, इसलिए वे सामान्य रूप से मूल्य के नाते न केवल गुणात्मक दृष्टि से समान प्रतीत होते हैं, बल्कि ऐसे मूल्यों की तरह सामने आते हैं, जिनके परिमाणों का आपस में मुकाबला किया जा सकता है. उनके मूल्यों के परिमाणों को चूँकि एक ही वस्तु के रूप में – यानी कपडे के रूप में – व्यक्त किया जाता है, इसलिए इन परिमाणों का एक दूसरे के साथ भी मुकाबला हो जाता है. उदाहरण के लिए, चूँकि १० पाउंड चाय = २० गज कपड़ा और ४० पाउंड कहवा = २० गज कपडा, इसलिए १० पाउंड चाय = ४० पाउंड कहवा. दूसरे शब्दों में, एक पाउंड चाय के मूल्य का जितना तत्त्व – अर्थात जितना श्रम – निहित है, १ पाउंड कहवे में उसका एक चौथाई निहित है.

सापेक्ष मूल्य का सामान्य रूप, जिसके अर्न्तगत पण्यों की पूरी दुनिया आ जाती है, उस एक पण्य को, जो बाकी सब पण्यों से अलग कर दिया जाता है और जिससे समतुल्य की भूमिका अदा कराई जाती है – यानी हमारे उदाहरण में कपडा, सार्विक समतुल्य में बदल देता है. अब सभी पण्यों का मूल्य समान ढंग से कपडे का भौतिक रूप धारण कर लेता है; अतएव अब कपडे का सभी पण्यों से और प्रत्येक पण्य से सीधा विनिमय हो सकता है. कपडा नामक पदार्थ हर प्रकार के मानव-श्रम का दृश्यमान अवतार, उनका सामाजिक कोशशायी रूप बन जाता है, बुनाई, जो एक खास चीज – कपडा – तैयार करने वाले कुछ व्यक्तियों का निजी श्रम होती है, इसके परिणामस्वरूप एक सामाजिक रूप – यानी श्रम के अन्य सभी प्रकारों के साथ समानता का रूप – प्राप्त कर लेती है. मूल्य को सामान्य रूप देने वाले असंख्य समीकरण कपडे में निहित श्रम को दूसरे हरेक पण्य में निहित श्रम के बराबर कर देते हैं, और इस प्रकार वे बुनाई के श्रम को अविभेदित मानव-श्रम के अभिव्यक्ति का सामान्य रूप बना देते हैं. इस ढंग से पण्यों के मूल्य से रूप में मूर्त-श्रम न केवल अपने नकारात्मक रूप में सामने आ जाता है, जिससे वास्तविक कार्य के प्रत्येक मूर्त रूप तथा उपयोगी गुण का अमूर्तिकरण अलग कर दिया जाता है, बल्कि उसकी अपनी सकरात्मक प्रकृति भी स्पष्ट रूप में प्रकट हो जाती है. सामान्य मूल्य रूप में वास्तविक श्रम से सभी प्रकार सामानयत: मानव- श्रम होने के – या मानव की श्रम-शक्ति का व्यय होने के – अपने समान स्वरूप में परिणत हो जाते हैं.

सामान्य मूल्य-रूप, जिसमें श्रम से पैदा होनेवाली तमाम वस्तुओं को विभेदित मानव-श्रम के जमाव मात्र के रूप में व्यक्त किया जाता है, अपनी बनावट से ही यह बात स्पष्ट कर देता है कि वह पण्यों की दुनिया का सामाजिक सारांश है. अतएव, यह रूप निर्विवाद ढंग से यह बात स्पष्ट कर देता है कि पण्यों की दुनिया में सभी प्रकार के श्रम में मानव-श्रम होने का जो गुण समान रूप से मौजूद है, उसी से उसको विशिष्ट सामाजिक स्वरूप प्राप्त होता है.

२) मूल्य के सापेक्ष रूप और समतुल्य-रूप का अन्योन्याश्रित विकास

मूल्य के सापेक्ष रूप के विकास का स्तर समतुल्य-रूप के विकास के स्तर के अनुरूप होता है| परंतु हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि समतुल्य-रूप का विकास केवल सापेक्ष रूप के विकास की ही अभिव्यक्ति एवं परिणाम होता है |किसी एक पण्य का प्राथमिक, अथवा इक्का-दुक्का, सापेक्ष-रूप किसी और पण्य को एक पृथक समतुल्य बना देता है. सापेक्ष रूप का विस्तारित रूप, जिसमें एक पण्य का मूल्य बाकी सब पण्यों के रूप में व्यक्त होता है, इन तमाम बाकी पण्यों को अलग-अलग प्रकार के विशिष्ट समतुल्यों का रूप प्रदान कर

देता है, क्योंकि बाकी तमाम पण्य उससे उस पदार्थ का काम लेने लगते हैं, जिसके रूप में वे सबके सब अपना मूल्य व्यक्त करते हैं.
मूल्य-रूप के दो ध्रुव हैं : मूल्य का सापेक्ष-रूप और समतुल्य रूप. उनके बीच जो विरोध है, वह स्वयं मूल्य-रूप के विकास के साथ बढ़ता है.
पहला रूप है : २० गज कपड़ा = १ कोट. उसमें अभी से यह विरोध मौजूद है, हालाँकि उसने अभी टिकाऊ रूप नहीं प्राप्त किया है. इस समीकरण को आप बायीं से दायीं ओर या दायीं से बायीं ओर, जैसे भी पढेंगे, वैसे ही कपड़े और कपड़े की भूमिकाएं भी बदल जाएँगी. एक सूरत में कपड़े का सापेक्ष मूल्य कोट के रूप में व्यक्त होता, दूसरी सूरत में कोट का सापेक्ष मूल्य कपड़े के रूप में.अतएव मूल्य के इस पहले रूप में ध्रुवीय वैषम्य को समझ पाना कठिन है.
रूप ख में एक समय में केवल एक ही प्रकार का पण्य अपने सापेक्ष मूल्य को पूरी तरह से विस्तृत कर पाता है, और वह यह विस्तारित रूप केवल इसलिए और केवल इसी हद तक प्राप्त करता है कि बाकी सब पण्य उसके संबंध में समतुल्यों का काम करने लगते हैं. यहाँ हम समीकरण को उस तरह उलट नहीं सकते, जिस तरह २० गज कपड़ा = १ कोट के समीकरण को उलट सकते हैं. यदि हम उसे उलटते हैं, तो उसका आम स्वरूप बदल जाता है और वह मूल्य के विस्तारित रूप से मूल्य का सामान्य रूप रह जाता है.
अंत में, रूप ग में चूंकि एक पण्य को छोड़कर बाकी सब पण्यों को समतुल्य-रूप से अलग किया जाता है, इसीलिए और इसी हद तक उससे पण्यों की दुनिया को मूल्य का एक सामान्य एवं सामाजिक सापेक्ष रूप मिल जाता है. अतएव एक अकेला पण्य, यानी कपड़ा, इसीलिए और इसी हद तक अन्य हरेक पण्य के साथ प्रत्यक्ष विनिमेयता का गुण प्राप्त कर लेता है कि अन्य हरेक पण्य इस गुण से वंचित कर दिया जाता है. [24]
दूसरी ओर, जो पण्य सार्विक समतुल्य का काम करता है, उसको सापेक्ष मूल्य-रूप से अलग किया जाता है. यदि कपड़ा या सार्विक समतुल्य का काम करनेवाला कोई और पण्य इसके साथ-साथ मूल्य के सापेक्ष रूप में भी हिस्सा बंटाने लगे, तो उसे खुद अपना समतुल्य बनना पड़ेगा. तब समीकरण यह हो जायेगा कि २० गज कपड़ा = २० कपड़ा. यह पुनरुक्ति न तो मूल्य को और न मूल्य के परिमाण को ही व्यक्त करती है. सार्विक समतुल्य के सापेक्ष मूल्य को व्यक्त करने के लिए हमें रूप ग को उल्ट देना पड़ेगा. इस समतुल्य के मूल्य का कोई ऐसा सापेक्ष रूप नहीं है, जो दूसरे पण्यों का भी हो, मगर सापेक्ष ढंग से उसका मूल्य अन्य पण्यों के एक अंतहीन क्रम के रूप में व्यक्त होता है.
इस प्रकार प्रकट होता है कि सापेक्ष मूल्य का विस्तारित रूप – अथवा ख रूप – ही समतुल्य-पण्य के सापेक्ष मूल्य का विशिष्ट रूप है.

मूल्य के सामान्य रूप से द्रव्य-रूप में संक्रमण

सार्विक समतुल्य-रूप सामान्य मूल्य का रूप है. इसलिए कोई भी पण्य यह रूप धारण कर सकता है. दूसरी ओर, यदि किसी पण्य ने सचमुच सार्विक समतुल्य-रूप (रूप ग) धारण कर लिया है, तो उसका एक यही कारण हो सकता है और वह इसी हद तक यह रूप धारण कर सकता है कि उसको बाकी तमाम पण्यों से और उन्हीं के द्वारा उनके समतुल्य के रूप में अलग किया गया है. और जिस क्षण यह अलगाव अंतिम तौर पर किसी एक खास पण्य तक सीमित हो जाता है, केवल उसी क्षण से पण्यों की दुनिया के सापेक्ष मूल्य का सामान्य रूप वास्तविक स्थिरता एवं सामान्य सामाजिक मान्यता प्राप्त करता है.
इस प्रकार जिस खास पण्य के भौतिक रूप के साथ समतुल्य-रूप सामाजिक तौर पर एकाकार हो जाता है, वह अब द्रव्य-पण्य बन जाता है, या यों कहिये कि वह द्रव्य का काम करने लगता है. इस पण्य का यह

विशिष्ट सामाजिक कार्य तथा इसलिए सामाजिक एकाधिकार हो जाता है कि वह पण्यों की दुनिया में सार्विक समतुल्य की भूमिका अदा करे. रूप ख में जो बहुत से पण्य कपड़े के विशिष्ट समतुल्य के रूप में सामने आते हैं और जो रूप ग में अपना-अपना सापेक्ष मूल्य समान ढंग से कपड़े के रूप में व्यक्त करते हैं, उनमें से खास तौर पर एक पण्य ने – यानी सोने ने – यह सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया है. अतएव, यदि रुप ग में हम कपड़े के स्थान पर सोना रख दें, तो यह समीकरण प्राप्त होता है :

द्रव्य-रूप

घ) द्रव्य-रूप	
२० गज कपडा = १ कोट = १० पाउंड चाय = ४० पाउंड कहवा = १ क्वार्टर अनाज = १/२ टन लोहा = क पण्य का x परिमाण =	= २ औंस सोना

रूप क से रूप ख की ओर बढ़ने में, और रूप ख से रूप ग की ओर बढ़ने में जो परिवर्तन हुए, वे बुनियादी ढंग से परिवर्तन हैं. दूसरी ओर, रूप ग और रूप घ में सिवाय इसके और कोई अंतर नहीं है कि घ में कपड़े के स्थान पर सोने ने समतुल्य का रूप धारण कर लिया है. रूप ग में जो कुछ कपड़ा था, वही रूप घ में सोना है, अर्थात वह सार्विक समतुल्य है. प्रगति केवल इस बात में है कि सीधे एवं सार्विक विनिमेयता का गुण -दूसरे शब्दों में, सार्विक समतुल्य रूप -अब सामाजिक रूढी के फलस्वरूप अंतिम तौर पर सोना नामक पदार्थ के साथ एकाकार हो गया है.

अब यदि बाकी तमाम पण्यों के संबंध में सोना द्रव्य बन गया है, तो केवल इसलिए कि पहले वह उनके संबंध में एक साधारण पण्य था. बाकी सब पण्यों की तरह उसमें भी या तो संयोगवश होनेवाले इक्के-दुक्के विनिमयों में साधारण समतुल्य की भांति, या दूसरे पण्यों के साथ-साथ एक विशिष्ट समतुल्य की भांति समतुल्य का काम करने की योग्यता थी. धीरे-धीरे वह कभी संकुचित और कभी विस्तृत सीमाओं के भीतर सार्विक समतुल्य का काम करने लगा. जैसे ही पण्यों की दुनिया के लिए उसने मूल्य की अभिव्यंजना में इस स्थान पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया, वैसे ही वह द्रव्य-पण्य बन गया और फिर -मगर उसके पहले नहीं – रूप घ रूप ग से साफ़ तौर पर अलग हो गया और मूल्य का सामान्य रूप द्रव्य-रूप में बदल गया.

जब कपड़े जैसे किसी एक पण्य का सापेक्ष मूल्य सोने जैसे किसी पण्य के रूप में, जो द्रव्य की भूमिका अदा करता है, प्राथमिक अभिव्यंजना प्राप्त करता है, तब वह अभिव्यंजना उस पण्य का दाम-रूप होती है. अतएव, कपड़े का दाम-रूप है : २० कपडा = २ औंस सोना, अथवा, यदि २ औंस सोना सिक्के के रूप में ढलने में २ पाउंड हो जाता है, तो २० गज कपड़ा = २ पाउंड.

द्रव्य-रूप को ठीक से समझने में कठिनाई इसलिए होती है कि सार्विक समतुल्य-रूप को और अधिक उसके एक अनिवार्य परिणाम के रूप में मूल्य के सामान्य रूप को – यानी रूप ग को – साफ-साफ समझना कठिन होता है. रूप ग को रूप ख से – यानी मूल्य के विस्तारित रूप से – निगमन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है,

और जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, रूप ख का आवश्यक अंग रूप क है, जिसमें २० गज कपड़ा = १ कोट, या क पण्य का x परिमाण = ख पण्य का y परिमाण. अतएव साधारण पण्य-रूप द्रव्य-रूप का बीजाणु होता है.

अनुभाग-4 पण्यों की जड़-पूजा और उसका रहस्य

पहली दृष्टि में पण्य बहुत मामूली सी और आसानी से समझ में आनेवाली चीज मालूम होता है. किन्तु उसका विश्लेषण करने पर पता चलता है कि वास्तव में वह एक बहुत अजीब चीज है, जो आधिभौतिक सूक्ष्मताओं और धर्मशास्त्रीय बारीकियों से ओतप्रोत है. जहाँ तक वह उपयोग मूल्य है, वहां तक, चाहे हम उसपर इस दृष्टिकोण से विचार करें कि वह अपने गुणों से मानव आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ है, और चाहे इस दृष्टिकोण से कि वे गुण मानव-श्रम का उत्पाद हैं, उसमें रहस्य की कोई बात नहीं है. यह बात दिन के उजाले की तरह स्पष्ट है कि मनुष्य अपने कार्यकलाप से प्रकृति के दिए हुए पदार्थों के रूप को इस तरह बदल देता है कि वे उसके लिए उपयोगी बन जाएँ. उदाहरण के लिए, लकड़ी का रूप उसकी एक मेज बनाकर बदल दिया जाता है. पर इस परिवर्तन के बावजूद में वही रोजमर्रे की साधारण चीज – लकड़ी – ही बनी रहती है. लेकिन जैसे ही वह पण्य के रूप में सामने आती है, वैसे ही वह मानो किसी इन्द्रियातीत वस्तु में बदल जाती है. तब वह न सिर्फ अपने पैरों के बल खड़ी होती है, बल्कि दूसरे तमाम पण्यों के संबंध में सिर के बल खड़ी हो जाती है और अपने काठ के दिमाग से ऐसे-ऐसे विचार निकालती है कि उनके सामने मृतात्माओं को बुलानेवाली प्रेत-विद्या भी मात खा जाती है.

अतएव पण्यों का रहस्मय रूप उनके उपयोग-मूल्य से उत्पन्न नहीं होता. और न ही वह उन कारकों के स्वभाव से उत्पन्न होता है, जिनसे मूल्य निर्धारित होता है. कारण, पहली बात तो यह है कि श्रम के उपयोगी रूप, अथवा उत्पादक कार्रवाईयां चाहे कितने भी भिन्न प्रकार की क्यों न हों, यह एक शरीरविज्ञान से संबंध रखनेवाला तथ्य है कि वे सबकी सब मानव-शारीर की कार्रवाईयां होती हैं, और ऐसी हर कार्रवाई में, उसका स्वभाव और रूप चाहे जैसा हो, बुनियादी तौर पर मनुष्य का मस्तिष्क, स्नायु और मांस-पेशियाँ, आदि खर्च होती हैं. दूसरे, जहाँ तक उस चीज का संबंध है, जिसके आधार पर मूल्य को परिमाणात्मक दृष्टि से निर्धारित किया जाता है, अर्थात जहाँ तक इस खर्च की मियाद का – यानी श्रम की मात्रा का – संबंध है, यह बात बिलकुल साफ है कि श्रम के परिमाण तथा गुण में स्पष्ट अंतर होता है. समाज की सभी अवस्थाओं में लोगों को इस बात में लाजिमी तौर पर दिलचस्पी रही होगी कि जीवन-निर्वाह के साधनों को पैदा करने में कितना श्रम-काल खर्च होता है, हालाँकि विकास की हर मंजिल पर यह दिलचस्पी बराबर नहीं रही होगी. [25] और आखिरी बात यह है कि जिस क्षण लोग किसी भी ढंग से एक दूसरे के लिए काम करने लगते हैं, उसी क्षण से उनका श्रम सामाजिक रूप धारण कर लेता है.

तब श्रम का उत्पाद पण्यों का रूप धारण करते ही रहस्यमय कैसे बन जाता है ? स्पष्ट है कि इसका कारण स्वयं यह पण्य-रूप ही है. हर प्रकार के मानव-श्रम की समानता वस्तुगत ढंग से इस प्रकार व्यक्त होती है कि हर प्रकार के श्रम का उत्पाद समान रूप से मूल्य होता है. श्रम-शक्ति के व्यय की उसकी अवधि द्वारा माप श्रम के उत्पाद के मूल्य के परिमाण का रूप धारण कर लेती है; और अंतिम बात यह कि उत्पादकों के पारस्परिक संबंध, जिनके भीतर ही उनके श्रम का सामाजिक स्वरूप अभिव्यक्त होता है, उनकी पैदा की हुई वस्तुओं के सामाजिक संबंध का रूप धारण कर लेते हैं.

अतएव पण्य एक रहस्मयी वस्तु इसलिए है कि मनुष्यों के श्रम का सामाजिक स्वरूप उनको अपने श्रम के उत्पाद का वस्तुगत लक्षण प्रतीत होता है; क्योंकि उत्पादकों के अपने श्रम से जो कुल उत्पाद पैदा हुआ है,

उसके साथ उनका संबंध उनको एक ऐसा सामाजिक संबंध प्रतीत होता है, जो स्वयं उनके बीच नहीं, बल्कि उनके श्रम से पैदा होनेवाली वस्तुओं के बीच कायम है. यही कारण है कि श्रम से पैदा होनेवाली वस्तुएं पण्य, यानी ऐसी सामाजिक वस्तुएं बन जाती हैं, जिनके गुण इन्द्रियगम्य भी हैं और इन्द्रियातीत भी. इसी प्रकार किसी वस्तु से आनेवाला प्रकाश हमें अपनी आंख की प्रकाशीय स्नायु का मनोगत उत्तेजन नहीं प्रतीत होता, बल्कि आंख के बाहर की किसी चीज का वस्तुगत रूप मालूम पड़ता है. लेकिन देखने की क्रिया में तो हर सूरत में एक चीज से दूसरी चीज तक, बाह्य वस्तु से आंख तक, सचमुच प्रकाश जाता है. इस क्रिया में भौतिक वस्तुओं के बीच एक भौतिक संबंध कायम होता है. लेकिन पण्यों के बीच ऐसा कुछ नहीं होता. यहाँ पण्यों के रूप में वस्तुओं के अस्तित्व का और श्रम से पैदा होनेवाली वस्तुओं के बीच पाए जानेवाले उस मूल्य के संबंध का, जो कि इन वस्तुओं को पण्य बना लेता है, उनके भौतिक गुणों से तथा इन गुणों से पैदा होनेवाले भौतिक संबंधों से कोई ताल्लुक नहीं होता. वहां मनुष्यों के बीच कायम एक खास प्रकार का सामाजिक संबंध है, जो उनकी नज़रों में वस्तुओं के संबंध का अजीबोगरीब रूप धारण कर लेता है. इसलिए यदि इसकी उपमा खोजनी है, तो हमें धार्मिक दुनिया के कुहासे से ढंके क्षेत्रों में प्रवेश करना होगा. उस दुनिया में मानव-मस्तिष्क से उत्पन्न कल्पनाएँ स्वतन्त्र और जीवित प्राणियों जैसी प्रतीत होती हैं, जो आपस में और मनुष्यजाति के साथ भी संबंध स्थापित करती रहती है. पण्यों की दुनिया में मनुष्य के हाथों से उत्पन्न होनेवाली वस्तुएं भी यही करती हैं. मैंने इसे जड़-पूजा का नाम दिया है; श्रम से पैदा होनेवाली वस्तुएं जैसे ही पण्यों के रूप में पैदा होने लगती हैं, वैसे ही उनके साथ यह गुण चिपक जाता है, और इसलिए यह जड़-पूजा पण्यों के उत्पादन से अलग नहीं की जा सकती.

जैसा की ऊपर दिए हुए विश्लेषण से स्पष्ट हो गया है, पण्यों की जड़-पूजा का मूल उनको पैदा करनेवाले श्रम के अनोखे सामाजिक स्वरूप में है.

एक सामान्य नियम के रूप में उपयोगी वस्तुएं केवल इसी कारण पण्य बनती हैं कि वे एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप से काम करनेवाले व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के दलों के निजी श्रम का उत्पाद होती हैं. इन तमाम व्यक्तियों के निजी श्रम का जोड़ समाज का कुल श्रम होता है. अलग-अलग उत्पादक चूँकि उस वक्त तक एक दूसरे के सामाजिक संपर्क में नहीं आते, जिस वक्त तक कि वे अपनी-अपनी पैदा की हुई वस्तुओं का विनिमय नहीं करने लगते, इसलिए हरेक उत्पादक के श्रम का विशिष्ट सामाजिक स्वरूप केवल विनिमय-कार्य में ही दिखाई देता है और अन्य किसी तरह नहीं. दूसरे शब्दों में, व्यक्ति का श्रम समाज के श्रम के एक भाग के रूप में केवल उन संबंधों द्वारा ही सामने आता है, जिनको विनिमय-कार्य प्रत्यक्ष ढंग से पैदा की गयी वस्तुओं के बीच और उनके जारी अप्रत्यक्ष ढंग से उनको पैदा करनेवालों के बीच स्थापित कर देता है. इसलिए उत्पादकों को एक व्यक्ति के श्रम को बाकी व्यक्तियों के श्रम के साथ जोड़नेवाले संबंध कार्यरत अलग-अलग व्यक्तियों के प्रत्यक्ष सामाजिक संबंध नहीं, वल्कि वैसे प्रतीत होते हैं, जैसे कि वे वास्तव में हैं – अर्थात व्यक्तियों के बीच भौतिक संबंध और वस्तुओं के बीच सामाजिक संबंध.

जब श्रम से पैदा होनेवाली वस्तुओं का विनिमय होता है, केवल तभी वे मूल्यों के रूप में एक समरूप सामाजिक हैसियत प्राप्त करती हैं, जो उपयोगी वस्तुओं के नाते उनके नाना प्रकार के अस्तित्व-रूपों से भिन्न होती हैं. श्रम से पैदा होनेवाली किसी भी वस्तु का उपयोगी वस्तु तथा मूल्य में यह विभाजन केवल उसी समय व्यवहारिक महत्त्व प्राप्त करता है, जब विनिमय का इतना विस्तार हो जाता है कि उपयोगी वस्तुएं विनिमय करने के उद्देश्य से ही पैदा की जाती हैं और इसलिए मूल्यों की शक्ल में उनके स्वरूप का पहले से, यानी उत्पादन के दौरान ही, ध्यान रखा जाता है. इस क्षण से ही हर अलग-अलग उत्पादक का श्रम सामाजिक दृष्टि से दोहरा स्वरूप प्राप्त कर लेता है. एक ओर तो उसको एक खास के उपयोगी श्रम के रूप में किसी खास सामाजिक आवश्यकता को पूरा करना पड़ता है और इस तरह सभी के सामूहिक श्रम के

आवश्यक अंग के रूप में, उस सामाजिक श्रम-विभाजन की एक शाखा के रूप में अपने लिए स्थान बनाना पड़ता है, जो स्वयंस्फूर्त ढंग से पैदा हो गया है. दूसरी ओर, वह उस एक उत्पादक की नाना प्रकार की आवश्यकताओं को केवल उसी हद तक पूरा कर सकता है, जिस हट तक कि निजी उपयोगी श्रम के विभिन्न प्रकारों की पारस्परिक विनिमेयता एक स्थापित सामाजिक तथ्य बन गयी है और इसलिए जिस हद तक कि हर उत्पादक का निजी उपयोगी श्रम बाकी सब उत्पादकों के श्रम के बराबर माना जाता है. श्रम के अत्यंत भिन्न रूपों का समानीकरण केवल इसी का फल हो सकता है कि इन रूपों की असमानताओं को अनदेखा कर दिया जाये अथवा उनको उनके सामान्य स्वरूप में -अर्थात मानव की श्रम-शक्ति के व्यय में, या अमूर्त मानव-श्रम में – परिणत कर दिया जाये. जब व्यक्ति के श्रम का दोहरा सामाजिक स्वरूप उसके मस्तिष्क में झलकता है, तो वह उसे केवल उन शक्लों में दिखाई देता है, जो रोजमर्रा के व्यवहार में श्रम से उत्पन्न वस्तुओं के विनिमय ने उस श्रम को दे दी हैं. इस तरह, उसके अपने श्रम में सामाजिक दृष्टि से उपयोगी होने का जो गुण मौजूद है, वह इस शर्त का रूप धारण कर लेता है कि श्रम से उत्पन्न वस्तु को न केवल उपयोगी, बल्कि दूसरों के लिए उपयोगी होना चाहिए, और उसके विशिष्ट श्रम में श्रम के अन्य सब विशिष्ट प्रकारों के समान होने का जो सामाजिक गुण विद्यमान रहता है, वह यह रूप धारण कर लेता है कि श्रम से पैदा होनेवाली, शारीरिक रूप से भिन्न-भिन्न प्रकार की तमाम वस्तुओं में एक गुण समान रूप से मौजूद है, और वह यह कि उन सबमें मूल्य है.

इसलिए जब हम अपने श्रम से उत्पन्न वस्तुओं का मूल्यों के रूप में एक दूसरे के साथ संबंध स्थापित करते हैं, तब हम यह इसलिए नहीं करते हैं कि हम इन वस्तुओं को समांग मानव-श्रम के भौतिक आवरण समझते हैं. बात इसकी ठीक उलटी है. जब कभी हम विनिमय द्वारा अपने श्रम से उत्पन्न भिन्न-भिन्न वस्तुओं का मूल्यों के रूप में समीकरण करते हैं, तब हम उसी कार्य द्वारा उन वस्तुओं पर खर्च किये गए श्रम के विभिन्न प्रकारों का भी मानव-श्रम के रूप में समीकरण कर डालते हैं. हम अनजाने ही ऐसा करते है, किन्तु फिर भी करते जरूर हैं. [26]

अतएव मूल्य अपने पर कोई ऐसा लेबुल लगाकर नहीं घूमता, जिसपर लिखा हो कि वह क्या है. बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि यह मूल्य ही है, जो श्रम से पैदा होनेवाली प्रत्येक वस्तु को एक सामाजिक चित्राक्षर बना देता है. बाद को हम इस चित्रलिपि को पढने की कोशिश करते हैं और खुद अपने सामाजिक उत्पाद का रहस्य समझने का प्रयत्न करते हैं, क्योंकि जिस प्रकार भाषा एक सामाजिक उत्पाद है, उसी प्रकार किसी उपयोगी वस्तु पर मूल्य की छाप अंकित कर देना भी एक सामाजिक उत्पाद है. हाल का यह नया वैज्ञानिक आविष्कार सचमुच मनुष्यजाति के विकास के इतिहास में एक नए युग के आरंभ का द्योतक है कि श्रम से उत्पन्न तमाम वस्तुएं, जहाँ तक वे मूल्य हैं, वहां तक अपने उत्पादन में खर्च किये गए मानव-श्रम की भौतिक अभिव्यंजना मात्र होती हैं. लेकिन इससे भी वह कुहासा नहीं छंटता, जिसके आवरण से ढंका हुआ श्रम का सामाजिक स्वरूप हमें खुद श्रम से उत्पन्न वस्तुओं का वस्तुगत गुण प्रतीत होता है. यह तथ्य कि उत्पादन के जिस खास रूप पर हम विचार कर रहें हैं उसमें – यानी पण्यों के उत्पादन में- स्वतन्त्र रूप से किये जानेवाले निजी श्रम का विशिष्ट सामाजिक स्वरूप इस बात में निहित होता है कि इस प्रकार का प्रत्येक श्रम मानव-श्रम होने के नाते एक दूसरे के समान होता है और इसलिए श्रम का यह सामाजिक स्वरूप उत्पाद में मूल्य का रूप धारण कर लेता है – यह तथ्य उत्पादकों को उपर्युक्त आविष्कार के बावजूद उतना ही यथार्थ और अंतिम प्रतीत होता है, जितना यह तथ्य कि वायु जिन गैसों से मिलकर बनी है, उनका विज्ञान द्वारा आविष्कार हो जाने के बाद भी खुद वायुमंडल में कोई परिवर्तन नहीं होता.

जब उत्पादक लोग कोई विनिमय करते हैं, तब व्यावहारिक रूप में उन्हें सबसे पहले इस बात की चिंता होती है कि अपने उत्पाद के बदले में उन्हें कोई और उत्पाद कितना मिलेगा या विभिन्न प्रकार के उत्पाद का

किन अनुपातों में विनिमय हो सकता है. जब ये अनुपात रीति और रिवाज के आधार पर कुछ स्थिरता प्राप्त कर लेते हैं, तब ऐसा लगता है है, जैसे वे अनुपात उत्पादित वस्तुओं की प्रकृति से उत्पन्न हो गए हों. मिसाल के लिए, तब एक टन लोहे के और दो औंस सोने का मूल्य में बराबर होना उतनी ही स्वाभाविक बात लगती है, जितनी यह बात कि दोनों वस्तुओं के भिन्न-भिन्न भौतिक एवं रासायनिक गुणों के बावजूद एक पाउंड सोना और एक पाउंड लोहा वजन में बराबर होते हैं. जब एक बार श्रम से उत्पन्न वस्तुएं मूल्य का गुण प्राप्त कर लेती हैं, तब यह गुण केवल मूल्य की मात्राओं के रूप में इन वस्तुओं की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया से स्थिरता प्राप्त करता है. मूल्य की ये मात्राएँ बराबर बदलती रहती है; ऐसी तब्दीलियाँ उत्पादकों की इच्छा, दूरदर्शिता और कार्यकलाप से स्वतन्त्र होती हैं. उत्पादकों के लिए उनका अपना सामाजिक कार्यकलाप वस्तुओं के कार्यकलाप का रूप धारण कर लेता है और वस्तुएं उत्पादकों के शासन में रहने के बजाय उलटे उनपर शासन करने लगती हैं. जब पण्यों का उत्पादन पूरी तरह विकसित हो जाता है, उसके बाद ही केवल संचित अनुभव से यह वैज्ञानिक विश्वास पैदा होता है कि एक दूसरे से स्वतन्त्र और फिर भी सामाजिक श्रम-विभाजन की स्वयंस्फूर्त ढंग से विकसित शाखाओं के रूप में किये जानेवाले निजी श्रम के तमाम विभिन्न प्रकार लगातार उन परिमाणात्मक अनुपातों में परिणत होते रहते है, जिनमें समाज को श्रम के इन विभिन्न प्रकारों की आवश्यकता होती है. और ऐसा क्यों होता है ? इसलिए कि श्रम से पैदा होनेवाली वस्तुओं के तमाम संयोगिक और सदा चढ़ते-उतरते रहनेवाले विनिमय -संबंधों के बीच उनके उत्पादन के लिए सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम-काल प्रकृति के किसी उच्चतर नियम की भांति बलपूर्वक अपनी सत्ता का प्रदर्शन करता है. जब कोई मकान भरराकर गिर पड़ता है, तब गुरुत्व का नियम भी इसी तरह, अपनी सत्ता का प्रदर्शन करता है. [27]

अतएव मूल्य के परिमाण का श्रम-काल द्वारा निर्धारित होना एक ऐसा रहस्य है, जो पण्यों के सापेक्ष मूल्यों के प्रकट उतार-चढ़ाव के नीचे छिपा रहता है. उसका पता लग जाने से यह ख्याल तो दूर हो जाता है कि श्रम से उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं के मूल्यों के परिमाण केवल संयोगिक ढंग से निर्धारित होते है, किन्तु उससे उनके निर्धारित होने के ढंग में कोई तबदीली नहीं आती.

सामाजिक जीवन के रूपों के विषय में मनुष्य के विचार और उनके फलस्वरूप उसके द्वारा इन रूपों का वैज्ञानिक विश्लेषण भी इन रूपों के वास्तविक ऐतिहासिक विकास के ठीक उल्टी दिशा ग्रहण करते हैं. मनुष्य उनपर उस समय विचार करना आरंभ करता है, जब विकास की क्रिया के परिणाम पहले से उसके सामने मौजूद होते हैं. जिन गुणों के फलस्वरूप श्रम से उत्पन्न वस्तुएं पण्य बन जाती हैं और जिनका उन वस्तुओं में होना पण्यों के परिचलन की आवश्यक शर्त है, वे पहले से ही सामाजिक जीवन के स्वाभाविक एवं स्वत:स्पष्ट रूपों का स्थायित्व प्राप्त कर लेते हैं, और उसके बाद कहीं मनुष्य इन गुणों के ऐतिहासिक स्वरूप को नहीं, क्योंकि उसकी दृष्टि में वे तो अपरिवर्तनीय होते हैं, बल्कि उनके अर्थ को समझने की कोशिश शुरू करता है. चुनांचे मूल्यों का परिमाण केवल उस वक्त निर्धारित हुआ, जब पहले पण्यों के दामों का विश्लेषण हो गया, और सभी पण्यों को मूल्यों के रूप में केवल उस वक्त मान्यता मिली, जब पहले सभी पण्यों को समान रूप से द्रव्य के रूप में व्यक्त किया जाने लगा. किन्तु पण्यों की दुनिया का यह अंतिम द्रव्य-रूप ही है कि जो निजी श्रम के सामाजिक स्वरूप को और अलग-अलग उत्पादकों के बीच पाए जानेवाले सामाजिक संबंधों को प्रकट करने के बजाय वास्तव में उनपर पर्दा डाल देता है. जब मैं यह कहता हूँ कि कोट या जूतों का कपड़े से इसलिए एक खास प्रकार का संबंध है कि कपड़ा अमूर्त मानव-श्रम का सार्विक अवतार है, तो मेरे कथन का बेतुकापन खुद जाहिर हो जाता है. फिर भी जब कोट और जूतों के उत्पादक इन वस्तुओं की तुलना सार्विक समतुल्य के रूप में कपड़े से या – जो कि एक ही बात है – सोने अथवा चाँदी से करते हैं, तो वे खुद अपने निजी श्रम और समाज के सामूहिक श्रम के संबंध को उसी बेतुके रूप में व्यक्त करते हैं.

बुर्जुआ अर्थशास्त्र के संवर्ग ऐसे ही रूपों के होते हैं. ये चिन्तन के ऐसे रूप होते है, जो उत्पादन की एक खास , इतिहास द्वारा निर्धारित प्रणाली की – अर्थात पण्यों के उत्पादन की – परिस्थितियों और संबंधों को सामाजिक मान्यता के साथ व्यक्त करते हैं. इसलिए, पण्यों का पूरा रहस्य , यह सारा जादू और इंद्रजाल, जो श्रम से उत्पन्न वस्तुओं को उस वक्त तक बराबर घेरे रहता है, जब तक कि वे पण्यों के रूप में रहती हैं, यह सब, जैसे ही हम उत्पादन के दूसरे रूपों पर विचार करना आरंभ करते हैं, वैसे ही फ़ौरन गायब हो जाता है. रॉबिन्सन क्रूसो के अनुभव चूँकि राजनीतिक अर्थशास्त्रियों का एक प्रिय विषय है, [[28]

इसलिए आईए, उसके द्वीप में चलकर एक नजर उसपर भी डालें. उसकी आवश्यकताएं बेशक बहुत कम और बहुत साधारण ढंग की है, मगर फिर भी उसे कुछ आवश्यकताओं को पूरा करना ही पड़ता है, और इसलिए उसे विभिन्न प्रकार के थोड़े से उपयोगी काम भी करने पड़ते हैं, जैसे औजार और फर्नीचर बनाना, बकरियां पालना, मछली मरना और शिकार करना. बस वह जो भगवान की प्रार्थना या उसी तरह के दूसरे और काम करता है, उनका हमारे हिसाब में कोई स्थान नहीं है, क्योंकि इन कामों से उसे आनंद प्राप्त होता है और उनको वह अपना मनोरंजन समझता है. इस बात के बावजूद कि उसे तरह-तरह का काम करना पड़ता है, वह जानता है कि उसके श्रम का रूप कुछ भी हो, वह है उसी एक रॉबिन्सन का काम, और इसलिए वह मानव-श्रम के विभिन्न रूपों के सिवा और कुछ नहीं है. आवश्यकता खुद उसे इसके लिए मजबूर कर देती है कि वह अलग-अलग ढंग के कामों में अपना समय ठीक-ठीक बांटे. अपने कुल काम में वह किस तरह के काम को अधिक समय देता है और किसको कम , यह इस बात पर निर्भर करता है कि जिस उपयोगी उद्देश्य को वह उस काम द्वारा प्राप्त करना चाहता है, उसकी प्राप्ति में उसे कितनी कम या ज्यादा कठिनाईयों पर काबू पाना होगा. यह हमारा मित्र रॉबिन्सन अनुभव से जल्दी ही सीख जाता है और जहाँ के भग्नावशेष से घड़ी, खाताबही और कलम तथा रोशनाई निकाल लाने के बाद एक सच्चे अंग्रेज़ की तरह हिसाब-किताब रखना शुरू कर देता है. उसके पास जितनी उपयोगी वस्तुएं हैं, उनकीसूची वह अपनी जमा पण्य की बही में दर्ज़ कर देता है और यह भी लिख लेता है कि उनके उत्पादन के लिए उसे किस तरह का काम करना पड़ा और इन वस्तुओं की निश्चित मात्राओं के उत्पादन में औसतन कितना श्रम-काल खर्च हुआ. रॉबिन्सन और उन तमाम वस्तुओं के बीच, जिनसे उसकी यह खुद पैदा की हुई दौलत तैयार हुई है, जितने भी संबंध हैं, वे सब इतने सरल और स्पष्ट हैं कि मि. सेडली टेलर तक उनको बिना कोई खास मेहनत किये समझ सकते हैं ! और फिर भी मूल्य के निर्धारण के लिए जितनी चीजों के आवश्यकता है, वे सब इन संबंधों में मौजूद हैं. आइये, अब हम रॉबिन्सन के सूर्य के प्रकाश से चमचमाते द्वीप को छोडकर अंधकार के आवरण में ढंके मध्ययुगी यूरोप को चलें. यहाँ स्वाधीन मनुष्य के स्थान पर हर आदमी पराधीन है. यह कृषि-दासों और सामंतों, अधीन सरदारों और अधिपतियों, जनसाधारण और पादरियों की दुनिया है. यहाँ व्यक्तिगत पराधीनता उत्पादन के सामाजिक संबंधों की उसी हद तक मुख्य विशेषता है, जिस हद तक कि वह इस उत्पादन के आधार पर संगठित जीवन के अन्य क्षेत्रों की मुख्य विशेषता है. लेकिन यहाँ चूँकि व्यक्तिगत पराधीनता समाज की बुनियाद है, ठीक इसीलिए श्रम तथा उससे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं को अपनी वास्तविकता से भिन्न कोई अजीबोगरीब रूप धारण करने के आवश्यकता नहीं होती. वे समाज के लेनदेन में सेवाओं और वस्तुओं के रूप में भुगतान का रूप धारण कर लेती हैं. यहाँ श्रम का तात्कालिक सामाजिक रूप उसका सामान्य अमूर्त रूप नहीं है, जैसा कि पण्यों के उत्पादन पर आधारित समाज में होता है, बल्कि श्रम का विशिष्ट और स्वाभाविक रूप ही यहाँ उसका तात्कालिक सामाजिक रूप है. जिस तरह पण्य पैदा करनेवाले श्रम को समय द्वारा मापा जाता है, उसी तरह बेगार के श्रम को भी मापा जाता है; लेकिन प्रत्येक कृषि-दास जानता है कि अपने सामंत की सेवा में वह जो कुछ खर्च कर रहा है, वह उसकी अपनी व्यक्तिगत श्रम - शक्ति की एक निश्चित मात्रा है. आय का जो दसवां हिस्सा पादरी को दे देना पड़ता है, वह उसके आशीर्वाद से

ज्यादा ठोस वास्तविकता होती है. इसलिए इस समाज में अलग-अलग वर्गों के लोगों की भूमिकाओं के बारे में हमारा जो भी विचार हो,श्रम करनेवाले व्यक्तियों के सामाजिक संबंध हर हालत में उनके आपसी व्यक्तिगत संबंधों के रूप में ही प्रकट होते हैं और उनपर कभी ऐसा पर्दा नहीं पड़ता कि वे श्रम से पैदा होनेवाली वस्तुओं के सामाजिक संबंध प्रतीत होने लगें.

सामूहिक श्रम, अथवा प्रत्यक्ष रूप से संबंध श्रम के किसी उदाहरण का अध्ययन करने के लिए हमें उस स्वयंस्फूर्त ढंग से विकसित रूप की ओर लौटने की आवश्यकता नहीं है, जिससे सभी सभ्य जातियों के इतिहास के प्रवेशद्वार पर हमारी भेंट होती. [29]

एक उदाहरण हमारे बिलकुल नजदीक है. वह उस किसान परिवार के दादापंथी ढंग के धंधों का उदाहरण है, जो अपने घरेलू इस्तेमाल के लिए अनाज, ढोर, सूत, कपड़ा और पोशाक तैयार करता है. जहाँ तक परिवार का संबंध है, ये विविध वस्तुएं उसके श्रम के उत्पाद हैं, मगर जहाँ तक इन वस्तुओं के आपसी संबंधों का सवाल है, वे पण्य नहीं हैं. श्रम के वे विभिन्न रूप, जिनसे ये तरह-तरह की वस्तुएं तैयार होती हैं, जैसे खेत जोतना,ढोर पालना, काटना, बुनना और कपड़े सीना, वे सब स्वयं अपने में और अपने वास्तविक रूप में प्रत्यक्ष सामाजिक कार्य हैं. कारण कि वे ऐसे परिवार के कार्य हैं, जिसमें पण्यों के उत्पादन पर आधारित समाज की तरह श्रम-विभाजन की एक स्वयंस्फूर्त ढंग से विकसित प्रणाली पाई जाती है. परिवार के भीतर काम का बंटवारा और अनेक सदस्यों के श्रम-काल का नियमन जिस तरह अलग-अलग मौसम के साथ बदलनेवाली प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं, उसी तरह आयु-भेद और लिंग-भेद पर भी निर्भर करते हैं. इस सूरत में प्रत्येक व्यक्ति की श्रम-शक्ति स्वभावतः परिवार की कुल श्रम-शक्ति के एक निश्चित अंश के रूप में ही व्यवहार में आती है, और इसलिए ऐसी हालत में यदि व्यक्तिगत श्रम-शक्ति के व्यय को उसकी अवधि द्वारा मापा जाता है, तो उसका कारण प्रत्येक व्यक्ति के श्रम का सामाजिक स्वरूप ही है.

आइये, अब तनिक परिवर्तन के लिए स्वतंत्र व्यक्तियों के एक ऐसे समाज की कल्पना करें, जिसके सदस्य साझे के उत्पादन के साधनों से काम करते हैं और जिसमें तमाम अलग-अलग व्यक्तियों की श्रम-शक्ति को सचेतन ढंग से समाज की संयुक्त श्रम-शक्ति के रूप में इस्तेमाल किया जाता है. इस समाज में रॉबिन्सन के श्रम की सारी विलक्षणताएँ फिर से दिखाई देती हैं, लेकिन इस अंतर के साथ कि यहाँ ये व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होती हैं. रॉबिन्सन जो कुछ भी पैदा करता था, वह केवल उसके अपने व्यक्तिगत श्रम का फल और इसलिए महज उसके अपने इस्तेमाल की चीज होता था. हमारे इस समाज की कुल पैदावार सामाजिक होती है. उसका एक हिस्सा उत्पादन के नये साधनों के रूप में काम में आता है और इसलिए सामाजिक ही बना रहता है. लेकिन एक दूसरे हिस्से का समाज के सदस्य जीवन-निर्वाह के साधनों के रूप में उपभोग करते हैं. चुनांचे इस हिस्से का उनके बीच बंटवारा आवश्यक होता है. इस बंटवारे की पद्धति समाज के उत्पादक संगठन के बदलने के साथ और उत्पादकों के ऐतिहासिक विकास की अवस्था के अनुरूप बदलती जाएगी. हम मान लेते हैं – मगर हम पण्यों के उत्पादन के साथ मुकाबला करने के लिए ही ऐसा मान रहे हैं – कि जीवन-निर्वाह के साधनों में उत्पादन करनेवाले हर अलग-अलग व्यक्ति का हिस्सा उसके श्रम-काल द्वारा निर्धारित होता है. इस सूरत में श्रम-काल दोहरी भूमिका अदा करेगा. जब एक निश्चित सामाजिक योजना के अनुसार उसका बंटवारा किया जाता है, तब उसके द्वारा अलग-अलग ढंग के कामों तथा समाज की विभिन्न आवश्यकताओं के बीच सही अनुपात कायम रखा जाता है. दूसरी ओर, वह इस बात की माप का काम भी देता है कि हर व्यक्ति के कंधों पर सम्मिलित श्रम के कितने भाग का भार पड़ा है और समाज के सदस्यों के व्यक्तिगत उपयोग के लिए निश्चित किये गये कुल पैदावार के भाग के भाग का हर व्यक्ति को कितना अंश मिलना चाहिए. इस सूरत में उत्पादन करनेवाले अलग-अलग व्यक्तियों के श्रम तथा उनकी पैदा

की हुई वस्तुओं, इन दोनों दृष्टियों से उनके सामाजिक संबंध अत्यंत सरल और सहज ही समझ में आ जानेवाले होते हैं, और यह बात न केवल उत्पादन के लिए, बल्कि वितरण के लिए भी सच होती है.
धार्मिक दुनिया वास्तविक दुनिया का प्रतिबिम्ब मात्र होती है. और पण्यों के उत्पादन पर आधारित समाज के लिए, जिसमें उत्पादन करनेवाले लोग आमतौर पर अपने श्रम से उत्पन्न वस्तुओं को पण्यों तथा मूल्यों के रूप में इस्तेमाल करके दूसरे के साथ सामाजिक संबंध स्थापित करते हैं और इस तरह अपने व्यक्तिगत एवं निजी श्रम के एकरूप मानव-श्रम के मानदंड में परिवर्तित कर देते हैं – ऐसे समाज के लिए अमूर्त मानव को पूजनेवाला इसाई धर्म, खासकर अपने बुर्जुआ रूपों में – प्रोटेस्टेंट मत, तटस्थेश्वरवाद, आदि में – सबसे उपयुक्त धर्म है. उत्पादन की प्राचीन एशियाई प्रणाली तथा अन्य प्राचीन प्रणालियों में हम यह पाते हैं कि उत्पादों के पण्यों में बदल जाने और इसलिए मनुष्यों के पण्यों के उत्पादकों में बदल जाने का गौण स्थान होता है, हालाँकि जैसे-जैसे आदिम समाज विघटन के अधिकाधिक निकट पहुंचते जाते हैं, वैसे-वैसे इस बात का महत्त्व बढ़ता जाता है. जिनको सचमुच व्यापारी जातियों का नाम दिया जा सकता था, ऐसी जातियां प्राचीन संसार में केवल बीच-बीच की खाली जगहों में ही पाई जाती थीं, जैसे एपिक्यूरस के देवता दो लोकों के बीच के स्थान में रहते थे, या जैसे यहूदी लोग पोलिश समाज के छिद्रों में छिपे रहते थे. बुर्जुआ समाज की तुलना में उत्पादन के ये प्राचीन सामाजिक संघटन अत्यंत सरल और सहज ही समझ में आ जानेवाले थे. लेकिन उनकी नींव या तो व्यक्तिगत रूप से मनुष्य के अपरिपक्व विकास पर, जिसने कि उस वक्त तक अपने को उस नाल से मुक्त नहीं किया था, जिसने उसे आदिम कबीले के समाज के अपने सहयोगी मनुष्यों के साथ बांध रखा था, या पराधीनता के प्रत्यक्ष संबंधों पर टिकी हुई थी. ऐसे सामाजिक संघटन केवल उसी हालत में पैदा हो सकते हैं और कायम रह सकते हैं, जब श्रम की उत्पादक शक्ति एक निम्न स्तर से उपर न उठी हो और इसलिए जब मनुष्य तथा मनुष्य के बीच और मनुष्य तथा प्रकृति के बीच भौतिक जीवन के क्षेत्र में पाए जानेवाले सामाजिक संबंध उतने ही संकीर्ण हों. यह संकीर्णता प्राचीन प्रकृति-पूजा में तथा लोक-धर्मों के अन्य तत्वों में प्रतिबिम्बित हुई है. वास्तविक दुनिया के धार्मिक प्रतिबिम्ब का बहरहाल केवल उसी समय तक अंतिम रूप में लोप होगा, जब रोजमर्रा के जीवन के व्यवहारिक संबंधों में मनुष्य को अपने सहयोगी मनुष्यों तथा प्रकृति के साथ सहज ही समझ में आ जानेवाले तथा युक्तिसंगत संबंधों के सिवाऔर किसी प्रकार के संबंधों का सामना नहीं करना पड़ेगा.
समाज की जीवन-प्रक्रिया भौतिक उत्पादन की प्रक्रिया पर आधारित होती है. उसके ऊपर पड़ा हुआ रहस्य का आवरण उस समय तक नहीं हटता, जब तक कि एक निश्चित योजना के अनुसार उसका सचेतन ढंग से नियमन नहीं किया जाता. लेकिन इसके लिए जरूरी है कि समाज के पास एक खास तरह की भौतिक बुनियाद या अस्तित्व की विशेष प्रकार की भौतिक परिस्थितियाँ हों, जो खुद विकास की एक लंबी और कष्टदायक प्रक्रिया का ही स्वयंस्फूर्त फल होती है.
यह सच है कि राजनीतिक अर्थशास्त्र ने मूल्य तथा उसके परिमाण का विश्लेष्ण किया है, भले ही वः कितना भी अपूर्ण क्यों न हो, [30]
और यह पता लगाया है कि इन रूपों के पीछे क्या छिपा है. लेकिन राजनीतिक अर्थशास्त्र ने यह सवाल एक बार भी नहीं उठाया है कि श्रम का प्रतिनिधित्व उसके उत्पाद का मूल्य और श्रम-काल का प्रतिनिधित्व उस मूल्य का परिमाण क्यों करते हैं. [31]
जिन सूत्रों पर साफ तौर पर इस बात की छाप देखी जा सकती है कि वे समाज की एक ऐसी अवस्था से संबंध रखते हैं, जिसमें उत्पादन की क्रिया मनुष्य द्वारा नियंत्रित होने के बजाय उसके उपर शासन करती है – ये सूत्र बुर्जुआ बुद्धि को प्रकृति द्वारा अनिवार्य बना दी गयी वैसी ही स्वत:स्पष्ट आवश्यकता लगते हैं, जैसी आवश्यकता खुद उत्पादक श्रम है. अतएव सामाजिक उत्पादन के बुर्जुआ रूप के पहले उसके जो रूप आ

चुके हैं, उनके साथ बुर्जुआ वर्ग कुछ-कुछ वैसा ही व्यवहार करता है, जैसा ईसाई धर्म के सर्वेसर्वा ईसाई धर्म से पहले के धर्मों के साथ करते थे [32]

पण्यों में जो जड़-पूजा निहित है या श्रम के सामाजिक गुण जिस वस्तुपरक रूप में प्रकट होते हैं, उसने कुछ अर्थशास्त्रियों को किस बुरी तरह भटका दिया है, इसका कुछ अनुमान अन्य बातों के अलावा उस नीरस और थका देनेवाली बहस से लग सकता है, जो इस विषय को लेकर चल रही है कि विनिमय-मूल्य के निर्माण में प्रकृति का कितना हाथ है. विनिमय-मूल्य चूँकि किसी भी वस्तु में लगाये गये श्रम की मात्रा को व्यक्त करने का एक खास सामाजिक ढंग होता है, इसलिए प्रकृति का उसमें ठीक उसी प्रकार कोई संबन्ध नहीं होता, जिस प्रकार उसका विनिमय के क्रम को निश्चित करने से कोई संबन्ध नहीं होता.

उत्पादन की वह प्रणाली, जिसमें उत्पाद पण्य का रूप धारण कर लेता है या जिसमें उत्पाद सीधे विनिमय करने के लिए पैदा किया जाता है, बुर्जुआ उत्पादन का सबसे अधिक सामान्य और सबसे कम विकसित रूप है. इसलिए वह इतिहास के बहुत शुरू के दिनों में ही दिखाई देने लगती है, हालाँकि उस वक्त वह आजकल की तरह इतने जोरदार एवं ठेठ रूप में सामने नहीं आती है. अतएव उस जमाने में उसके साथ जुडी हुई जड़-पूजा को अपेक्षाकृत अधिक आसानी से समझा जा सकता है. लेकिन जब हम अधिक ठोस रूपों पर आते हैं, तो यह दिखावटी सरलता भी गायब हो जाती है. द्रव्य-प्रणाली की भ्रांतियां कहाँ से पैदा हुई ? इस प्रणाली के अनुसार जब सोना और चाँदी द्रव्य का काम करते हैं, तो वे उत्पादकों के बीच किसी सामाजिक संबन्ध का प्रतिनिधित्व नहीं करते, बल्कि कुछ अजीबोगरीब सामाजिक गुण रखनेवाली प्राकृतिक वस्तुओं के रूप में सामने आते हैं. और आधुनिक राजनीतिक अर्थशास्त्र को भी ले लीजिये, जो द्रव्य-प्रणाली को बहुत तिरस्कार की दृष्टि से देखता है. जब कभी वह पूंजी पर विचार करने बैठता है, तब उसका अन्धविश्वास क्या दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट नहीं हो जाता ? राजनीतिक अर्थशास्त्र को इस फिजियोक्रेटिक भ्रान्ति से छुटकारा पाए हुए भी अभी कितने दिन हुए हैं कि किराये का उद्भव-स्रोत समाज नहीं, बल्कि धरती है ?

जो बात आगे आनेवाली है, उसकी अभी से चर्चा किये बिना हम पण्य-रूप से संबन्ध रखनेवाला केवल एक उदाहरण और देकर संतोष कर लेंगे. यदि पण्य खुद बोल पाते, तो वे कहते : हमारे उपयोग-मूल्य में इंसानों को दिलचस्पी हो सकती है, पर वस्तुओं के रूप में वह हमारा अंश हमारा मूल्य है. पण्यों के रूप में हमारा स्वाभाविक आदान-प्रदान इस बात का प्रमाण है. एक दूसरे की दृष्टि में हम विनिमय-मूल्यों के सिवा और कुछ नहीं हैं. और अब जरा सुनिए कि ये ही पण्य अर्थशास्त्रियों के मुख से किस तरह बोलते हैं. “मूल्य” (अर्थात विनिमय-मूल्य) “चीजों का गुण होता है, और धन-संपदा” (अर्थात उपयोग-मूल्य) “मूल्यों का. इस अर्थ में मूल्य का लाजिमी तौर पर मतलब होता है विनिमय, किन्तु धन-संपदा का यह मतलब नहीं होता.” [33]

धन-संपदा” (उपयोग-मूल्य) “मनुष्यों का गुण है और मूल्य पण्यों का गुण है. मनुष्य या समाज धनी होता है, और मोती हीरा मूल्यवान होता है... मोती या हीरा” मोती या हीरे के रूप में “मूल्यवान होता है.” [34]

अभी तक किसी रसायनवेत्ता ने न तो मोती में विनिमय-मूल्य खोजा है और न ही हीरे में. लेकिन इस रासायनिक तत्त्व के आर्थिक आविष्कारक, जो प्रसंगत आलोचना के क्षेत्र में बड़ी सूक्ष्म दृष्टि रखने का दावा करते हैं, पाते हैं कि वस्तुओं में उपयोग-मूल्य उनके भौतिक गुणों में स्वतंत्र होता है, जब कि उसका मूल्य, इसके विपरीत वस्तुओं के रूप में उनका एक अंश होता है. जो बात उनके इस विचार को और पक्का कर देती है, वह यह विचित्र तथ्य है कि वस्तुओं का उपयोग-मूल्य विनिमय के बिना ही मनुष्य के साथ इन वस्तुओं के सीधे संबन्ध के जरिये प्रत्यक्ष रूप में सामने आ जाता है, जबकि दूसरी तरफ, उनका मूल्य केवल विनिमय के द्वारा, अर्थात एक सामाजिक प्रक्रिया के जरिये ही , प्रत्यक्षतः सम्मुख आता है. इस संबन्ध में

हमारे भले मित्र डोगबेरी की किसको याद न आयेगी, जिसने अपने पड़ोसी सीकोल से कहा था कि “सुन्दरता भाग्य की देन होती है, पर लिखना-पढना प्रकृति से मिलता है.” [35]

---

1 Karl Marx, Zur Kritik der Politischen Oekonomie, Berlin, 1859. S.3

2. “इच्छा का मतलब है आवश्यकता का होना. वह दिमाग की क्षुधा और उतनी ही स्वाभाविक होती हैं, जितनी की शरीर की भूख…अधिकतर (चीजों) का मूल्य इसलिए होता है कि वे दिमाग की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं.” (Nicholas Barbon, A Discourse Concerning Coining the New Money Lighter, In Answer to Mr. Locke’s Considerations etc., London, 1696, pp.2,3.)

3. सभी चीजों का अपना एक स्वाभाविक गुण (उपयोग-मूल्य के लिए बार्बोन ने इस विशेष नाम का प्रयोग किया है) होता है. यह गुण सभी स्थानों में एक जैसा रहता है, जैसे कि चुम्बक पत्थर में लोहे को अपनी ओर खींचने का स्वाभाविक गुण” (n. Barbon, 1.c., p.6.). चुम्बक पत्थर में लोहे को अपनी ओर खींचने का जो गुण होता है, वह केवल उसी समय उपयोग में आया, जब पहले इस गुण के द्वारा चुम्बक के ध्रुवत्व की खोज हो गयी.

4. “किसी भी चीज का स्वाभाविक मूल्य मानव-जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने या उसकी सुविधाओं के हेतु काम आने की उसकी योग्यता में निहित है.” (Johan Locke, Some Considerations of the Consequences of the Lowering of Interest, 1691: देखिये works, London, 1717, Vol. II, p.28.) १७वीं सदी के अंग्रेजी लेखकों की रचनाओं में हम अक्सर उपयोग-मूल्य के अर्थ में ” “worth” शब्द का और विनिमय-मूल्य के अर्थ में “value” शब्द का प्रयोग पाते हैं. यह उस भाषा की भावना के सर्वथा अनुरूप है, जिसको वास्तविक वस्तु के लिए ट्युटोनिक भाषाओँ के शब्द और उसके प्रतिबिंब के लिए रोमांस भाषाओँ के शब्द का इस्तेमाल पसंद है.

5. बुर्जुआ समाजों में आर्थिक क्षेत्र में इस fictio juris [विधि की परिकल्पना] को मानकर चला जाता है कि खरीदार के रूप में हरेक को पण्यों का सर्वांगीण ज्ञान है.

6. “मूल्य इस बात में निहित है कि किसी चीज का दूसरी चीज से , एक उत्पाद की एक निश्चित मात्रा का किसी दूसरे उत्पाद की एक निश्चित मात्रा से किस अनुपात में विनिमय होता है.” (Le trosne, De l’Interet social, physiocrates, ed. Daire, Paris, 1846, p. 889.)

7. “यथार्थ किसी चीज में नहीं हो सकता.” (N. Barbon, A Discourse Concerning Coining the New Money Lighter etc., London, 1696, p. 6.) या जैसा कि बटलर ने कहा है :
“मूल्य वस्तु का उतना ही है,
जितना वह बदले में पाए |”

8. N. Borbon,1.c., pp. 53,7.

9 “जब उनका ” (जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का) “आपस में विनिमय होता है, तब उनका मूल्य इस बात से निर्धारित होता है कि उनको पैदा करने में कितने श्रम की लाजिमी तौर पर आवश्यकता होती है और आम तौर पर उनके उत्पादन में कितना श्रम लगता है .” (Some Thoughts on the Interest of Money in General, and Particularly in the Public Funds etc.,London, p. 36) पिछली शताब्दी में लिखी गयी इस उलेखनीय गुमनाम रचना पर कोई तारिख नहीं है. परन्तु अंदरूनी प्रमाणों से यह बात साफ़ है कि वह जार्ज द्वितीय के राज्य-काल में १७३९ या १७४० के आसपास प्रकाशित हुई थी.

10 “एक ही प्रकार की सभी उत्पादित वस्तुओं को मूलतया केवल एक ही राशिः समझना चाहिए, जिसका दाम सामान्य बातों से निर्धारित होता है और जिसके सम्बन्ध में विशिष्ट बातों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता.”(Le trosne, De l’Interet social, physiocrates, ed. Daire, Paris, 1846, p. 893.)
11 Karl Marx, Zur Kritik der Politischen Oekonomie, Berlin, 1859. S.6.

11a . [चौथे जर्मन संस्करण की पाद-टिपण्णी : कोष्ठक के भीतर छापा यह अंश मैंने यहाँ इसलिए जोड़ दिया है कि उसके छूट जाने से अकसर यह गलतफहमी पैदा हो जाती थी कि मार्क्स हर उस उत्पाद को पण्य समझते थे, जिसका उपयोग उसको पैदा करने वाले के सिवा कोई और आदमी करता था. - फ्रेडरिक एंगेल्स]

12. Karl Marx, Zur Kritik der Politischen Oekonomie, Berlin, 1859. S.6.

13. “विश्व की सभी परिघटनाएं , चाहे वे मनुष्य के हाथ का फल हों अथवा प्रकृति के सार्विक नियमों का परिणाम, वास्तव में सृजन नहीं बल्कि पदार्थ के रूपों में परिवर्तन है. मानव बुद्धि जब कभी उत्पादन के विचार का विश्लेषण करती है, तो उसे केवल दो ही तत्त्व दिखाई पड़ते हैं – एक जोड़ना, दूसरा तोड़ना; यही बात मूल्य ” (उपयोग-मूल्य, हालाँकि फिजियोक्रेटों के साथ वाद-विवाद के इस अंश में वेर्री के मन में भी यह बात पूरी तरह साफ़ नहीं है कि वह किस प्रकार के मूल्य की चर्चा कर रहा है) “अथवा धन के उत्पादन के संबंध में भी लागू होती है, जब मनुष्य द्वारा पृथ्वी, वायू, और जल को अनाज में रूपांतरित कर दिया जाता है, या एक कीड़े के चेपदार स्राव को रेशम में, या धातु के अलग-अलग टुकडों को एक घड़ी में बदल दिया जाता है.” _Pietro Verri, Meditazioni sulla Economia Politica (पहली बार १७८१ में प्रकाशित) यह उद्धरण कुस्तोदी द्वारा प्रकाशित इतालवी अर्थशास्त्रियों की रचनाओं के संस्करण के Parte Moderna, t. XV, p. 22 से लिया गया है.

14. तुलना कीजिये Hegel, Philosophie des Rechts, Berlin, 1840, S.250, S190 से.

15. पाठक को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि हम यहाँ मजदूरी की या मजदूर को एक निश्चित श्रम-काल का जो मूल्य मिलता है, उसकी चर्चा नहीं कर रहे हैं, बल्कि हम यहाँ पण्य के उस मूल्य की चर्चा कर रहे हैं, जिसमें उस श्रम-काल ने भौतिक रूप धारण किया है. मजदूरी एक ऐसी प्रवर्ग है, जिसका अभी हमारी खोज की मौजूदा मंजिल पर, कोई अस्तित्व नहीं है.

16. यह साबित करने के लिए कि श्रम ही एकमात्र ऐसी सर्वथा प्रयाप्त एवं वास्तविक माप है, जिससे कभी भी तमाम पण्यों के मूल्यों का अनुमान लगाया जा सकता है और उनकी एक दूसरे से तुलना की जा सकती है, ऐडम स्मिथ ने लिखा है : “श्रम की सामान मात्राओं का मजदूर के लिए सब समय और सब जगह एक सा मूल्य होना चाहिए. उसके स्वास्थ्य, बल और क्रियाशीलता की सामान्य अवस्था में और उसमें जितनी औसत कुशलता हो, उसके साथ उसे अपने अवकाश, अपनी स्वतंत्रता तथा अपने सुख का सदा एक सा अंश त्यागना पड़ता है.” (Wealth of Nations, Vol. 1, Ch. V.) एक ओर तो यहाँ (किन्तु हर जगह नहीं) ऐडम स्मिथ ने पण्यों के उत्पादन में खर्च किये गए श्रम की मात्रा के द्वारा मूल्य के निर्धारित होने को श्रम के मूल्य के द्वारा पण्यों के मूल्य के निर्धारित होने के साथ गडबडा दिया है और इसके फलस्वरूप यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि श्रम की सामान मात्राओं का सदा एक सा मूल्य होता है. दूसरी ओर, उनको अंदेशा है कि जहाँ तक श्रम पण्यों के मूल्य के रूप में प्रकट होता है, वहां तक वह केवल श्रम-शक्ति के खर्च के रूप में ही गिना जाता है, लेकिन श्रम-शक्ति का यह खर्च उनके लिए महज अवकाश, स्वतंत्रता और सुख का त्याग करना है, न कि इसके साथ भी जीवित प्राणियों की साधारण कार्रवाई. लेकिन ऐडम स्मिथ का आशय तो केवल मजदूरी पर काम करनेवाले आधुनिक मजदूर से ही है. उनके उस गुमनाम पूर्ववर्ती का, जिसे हमने नौवीं पाद-टिपण्णी में उद्धृत किया है, यह कहना ज्यादा सही लगता है कि “जीवन की इस आवश्यक वस्तु को प्राप्त करने के लिए एक आदमी ने हफ्ते भर तक काम किया है… और वह जो उसे बदले में कुछ देता है, वह जब इसका हिसाब लगाने बैठता है कि उसका ठीक समतुल्य क्या है, तो वह इससे बेहतर और कुछ नहीं कर सकता कि अनुमान लगाकर देखे कि इतना ही श्रम और समय उसका किस चीज में लगा था. और यह – असल में देखा जाये, तो – एक चीज में किसी निश्चित समय तक लगे एक आदमी के श्रम का किसी दूसरी चीज में उसी समय तक लगे किसी दूसरे आदमी के श्रम के साथ विनिमय करने के सिवा और कुछ नहीं है.” (l. c.,p. 39.) [यहाँ श्रम के जिन दो पहलुओं पर विचार किया गया है, उनके लिए अंग्रेजी भाषा में सौभाग्य से दो अलग-अलग शब्द है. वह श्रम, जो उपयोग-मूल्य पैदा करता है और जिसका महत्त्व गुणात्मक होता है, work कहलाता है, जो labour से अलग होता है; और जो श्रम मूल्य पैदा करता है और जिसका महत्त्व परिमाणात्मक होता है, वह labour कहलाता है, जो work से अलग होता है. " फ्रेडरिक एंगेल्स]

17 चंद अर्थशास्त्रियों ने मूल्य के रूप का विश्लेषण करने में दिलचस्पी दिखाई है, – और उनमें से एक एस. बेली हैं, – भी किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकें हैं. एक तो इसलिए कि वे मूल्य के रूप को खुद मूल्य के साथ गडबडा देते हैं, और दूसरे इसलिए कि वे व्यवहारिक बुर्जुआ लोगों के कुप्रभाव में आकर इस सवाल के केवल परिमाणात्मक पहलू पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर देते हैं. “कोई निश्चित परिमाण प्राप्त करने की क्षमता ही…मूल्य होती है.” Money and its Vicissitudes, London, 1837, 11, by S. Bailey.)

17a ख्यातिनामा फ्रैंकलिन विलियम पैटी के बाद आनेवाले उन पहले अर्थशास्त्रियों में से थे, जो मूल्य की प्रकृति को समझ सके, वह लिखते हैं : “व्यापार चूँकि सामान्यतया श्रम के साथ श्रम के विनिमय के सिवा और कुछ नहीं होता, इसलिए यह सर्वथा उचित बात है कि सभी चीजों का मूल्य…श्रम के द्वारा मापा जाता है.” (The Works of B. Franklin etc., edited by Sparks, Boston,1836, Vol.2, p.267.) फ्रैंकलिन नहीं जानते थे कि हर चीज का मूल्य श्रम में आंककर वह श्रम के जिन अलग-अलग प्रकारों का विनिमय हो रहा है, उनके आपसी भेद की अवहेलना किये दे रहे हैं और इस तरह उन सबको समान मानव-श्रम में

बदल दाल रहे हैं. लेकिन इससे अनजान होने पर भी वह इसे कह ही जाते हैं. पहले वह "एक श्रम" की चर्चा करते हैं, फिर "दूसरे श्रम" की और अंत में हर चीज के मूल्य के सारतत्त्व के रूप में बिना कोई विशेषण जोड़े "श्रम" का ज़िक्र करने लगते हैं.

18 एक ढंग से यह बात लोगों पर भी लागू होती है. इन्सान चूँकि न तो हाथ में दर्पण लेकर इस दुनिया में आता है और न ही फिख्तेवादी दार्शनिक बनकर, जिनके लिए "मैं मैं हूँ" कह देना ही प्रयास होता है, इसलिए इन्सान अपने को पहले दूसरे इंसानों में देखकर पहचानता है. पीटर जब पहले अपने ही प्रकार के प्राणी के रूप में पॉल से तुलना कर लेता है, तभी वह अपने आपको इन्सान के रूप में पहचान पाता है. और तब पॉल अपने समस्त पॉलीय व्यक्तित्व को लिए हुए पीटर के लिए मनुष्यजाति का प्रतिनिधि-रूप बन जाता है.

19 इसके पहले के प्रष्ठों में यदा-कदा और यहाँ पर भी "मूल्य" शब्द का उस मूल्य के अर्थ में प्रयोग हुआ है, जिसकी मात्रा निर्धारित हो चुकी है, अथवा यह कहिये कि मूल्य के परिमाण के अर्थ में उसका प्रयोग हुआ है.

20 मूल्य के परिमाण तथा उसकी सापेक्ष अभिव्यंजना के बीच पाई जानेवाली इस असंगति से सतही अर्थशास्त्रियों ने अपनी परंपरागत चालाकी से फायदा उठाया है. उदाहरण के लिए : "एक बार आपने यह माना नहीं कि क का मूल्य इसलिए गिर जाता है कि ख का, जिसके साथ कि उसका विनिमय होता है, चढ़ जाता है, हालाँकि इस बीच क में पहले से कम श्रम खर्च नहीं हुआ है, आपका मूल्य का सिद्धांत भरभराकर गिर पड़ेगा... जब उसने (रिकार्डो ने) यह मान लिया कि ख से सापेक्षता में क का मूल्य चढ़ जाने पर क से सापेक्षता में ख का मूल्य गिर जाता है, तो इस तरह उसने वह नींव ही काट डाली, जिसपर उसकी यह शानदार स्थापना टिकी थी कि किसी भी पण्य का मूल्य सदा उसमें निहित श्रम द्वारा निर्धारित होता है. क्योंकि यदि क की लागत में होनेवाला परिवर्तन न केवल ख से, जिसके साथ कि उसका विनिमय होता है, सापेक्षता में स्वयं उसके अपने मूल्य को बदल देता है, बल्कि क से सापेक्षता में ख के मूल्य को भी बदल देता है, हालाँकि ख को पैदा करने के लिए आवश्यक श्रम-मात्रा में कोई तबदीली नहीं हुई है, तो न सिर्फ वह सिद्धांत भरभराकर गिर पड़ता है, जिसका दावा है कि किसी वस्तु में जितना श्रम लगाया जाता है, वह उसके मूल्य के नियमन करता है, बल्कि वह सिद्धांत भी झूठा हो जाता है, जिसका कहना है कि किसी वस्तु की लागत ही उसके मूल्य का नियमन करती है." (J. Broadhurst, Political Economy, London, 1842, pp. 11, 17.)

यदि यह बात सच है, तो मिस्त्र ब्रोडहर्स्ट उतनी ही सचाई के साथ यह भी कह सकते थे कि इन प्रभागों पर विचार कीजिये : १०/२०, १०/५०, १०/१००, इत्यादि. इसमें १० की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता और फिर भी उसका समानुपातिक परिमाण – यानी २०, ५०, १००, आदि की तुलना में उसका परिमाण – बराबर घटता जाता है. अतएव, यह महान सिद्धांत झूठा सिद्ध हो जाता है कि किसी भी पूर्ण संख्या के परिमाण का , जैसे कि १० के परिमाण का, इस बात से "नियमन" होता है कि उसमें कितनी इकाईयां मौजूद हैं. [इस अध्याय के अनुभाग ४ में पृष्ट ९९ की पाद-टिप्पणी [31] में लेखक ने बताया है कि "सतही राजनीतिक अर्थशास्त्र" से उसका क्या मतलब है. – फ्रेडरिक एंगेल्स]

21 संबंधो की इस प्रकार की अभिव्यन्जनाएं साधारणतया बहुत अजीब ढंग की होती है. हेगेल ने उनको "प्रतिवर्ती संवर्ग" कहा था. उदाहरण के लिए, कोई आदमी यदि राजा है, तो केवल इसीलिए कि दूसरे आदमियों का उसके साथ प्रजा का संबंध है. वे लोग, इसके विपरीत, अपने को इसलिए प्रजा समझते हैं कि वह आदमी राजा है.

22 चुंगी के सब इंसपेक्टर F.L.A. Ferrier, Du Government considere dans ses rapports avec le commerce, Peris, 1805, and Chales Ganilh, Des Systemes,d' Economie Politique, 2 eme ed., 1821.

22a उदाहरण के लिए होमर की रचनाओं में एक वस्तु का मूल्य बहुत सी भिन्न-भिन्न वस्तुओं के रूप में व्यक्त किया गया है.

23 इस कारण, जब कपड़े का मूल्य कोटों के रूप में व्यक्त किया जाता है, तब हम कपड़े के कोट-मूल्य की चर्चा कर सकते हैं; जब वह अनाज के रूप में व्यक्त किया जाता है, तब हम उसके अनाज-मूल्य की चर्चा कर सकते हैं, और इसी तरह यह सिलसिला जारी रह सकता है. इस प्रकार की प्रत्येक अभिव्यक्ति हमें यह बताती है कि कोट, अनाज आदि प्रत्येक उपयोग-मूल्य के रूप में जो कुछ प्रकट होता है, वह कपड़े का मूल्य है. "विनिमय द्वारा अपने संबंध को व्यक्त करने वाले किसी भी पण्य के मूल्य को हम ... जिस पण्य के साथ भी उसका मुकाबला किया जाये, उसके अनुसार अनाज-मूल्य, कपड़ा-मूल्य, आदि कह सकते हैं, और इस तरह भिन्न-भिन्न प्रकार के हजारों मूल्य होते हैं, और वे सब समान रूप से वास्तविक और समान रूप से बराय नाम होते हैं." (A Critical Dissertation on the Nature, Measures and Causes of Value; chiefly in reference to the writings of Mr. Ricardo and his followers. By the Author of Essays on the Formation etc. of Opinions, London, 1825, p. 39) इस गुमनाम रचना के लेखक एस. बेली थे. अपने ज़माने में इस रचना ने इंग्लैंड में बहुत हलचल पैदा की थी. बेली का ख्याल था कि इस तरह एक ही मूल्य

की अनेक सापेक्ष अभिव्यंजनाओं की ओर संकेत करके उन्होंने यह साबित कर दिया है कि मूल्य की अवधारणा को किसी भी प्रकार निर्धारित करना असंभव है. उनके अपने विचार चाहे जितने संकुचित रहे हों, फिर भी उन्होंने रिकार्डो के सिद्धांतों के कुछ गंभीर दोषों को इंगित कर दिया था. इसका प्रमाण यह है कि रिकार्डो के अनुयायियों ने बड़ी कटुता के साथ उनपर हमला किया. मिसाल के लिए देखिये, वेस्टमिनिस्टर रिव्यू

24. यह बात कदापि स्वतः स्पष्ट नहीं है कि सीधे और सार्विक विनिमेयता का यह गुण गोया एक ध्रुवीय गुण है, और वह अपने उलटे ध्रुव से, यानी सीधे विनिमेयता के अभाव से, उसी अन्तरंग ढंग से जुड़ा है, जिस अन्तरंग ढंग से चुम्बक का धनात्मक ध्रुव उसके ऋणात्मक ध्रुव से जुड़ा होता है. इसलिए जिस तरह यह कल्पना की जा सकती है कि कैथोलिक माननेवाले सभी लोगों का एक साथ पोप बन जाना संभव है, उसी प्रकार यह कल्पना भी की जा सकती है कि तमाम पण्य एक साथ यह गुण प्राप्त कर सकते हैं. इस निम्न बुर्जुआ वर्ग के नज़रों में, जिसके लिए पण्यों का उत्पादन मानव-स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वाधीनता की चरमावस्था है, यह जाहिर है, अत्यंत वांछनीय बात होती, यदि पण्यों का सीधा विनिमय न हो सकने से पैदा होनेवाली यह कठिनाई दूर हो जाये. प्रूदों का समाजवाद इस कूपमंडूक कल्पनालोक का ही विस्तार से प्रतिपादित रूप है. जैसा कि मैंने अन्यत्र प्रमाणित किया किया है, प्रूदों के इस समाजवाद में तो मौलिकता भी नहीं है. उनसे बहुत पहले ग्रे, ब्रे और अन्य लोग यह काम अधिक सफलतापूर्वक कर चुके थे. लेकिन इस सबके बावजूद कुछ हलकों में आज भी इस तरह का ज्ञान "विज्ञान" के नाम से फल-फूल रहा है. "विज्ञान" शब्द का जैसा दुरूपयोग प्रूदों की विचारधारा के अनुयायियों ने किया है, वैसा किसी ने नहीं किया होता, क्योंकि "जब विचारों से काम नहीं चलता, तब सही मौके पर एक शब्द काम कर जाता है." गेटे कृत काव्य-नाटक 'फाऊस्ट ', भाग १, दृश्य ४ से उद्धृत.

25. प्राचीन जर्मनों में जमीन मापने की इकाई उतनी जमीन होती थी, जितनी जमीन से एक दिन में फसल काटी जा सकती थी और जो Tagwerk (या Tagwanne) (jurnale या jurnalis, terra jurnalis, jornalis या diurnalis), Mannwerk, Mannskraft, Mannsmaad, Mannshauet, आदि कहलाती थी. देखिये G.L. von Maurer, Einleitung zur Geschichte der Mark-, Hof-, u.s.w. Verfassung etc., Munchen, 1854, S.129 sq.

26 . इसलिए जहाँ गालियानी यह कहता है कि मूल्य व्यक्तियों के बीच पाया जानेवाला एक संबंध है – "La Ricchezza e una ragione tra due persone" – वहां उसको यह और 25जोड़ देना चाहिए था कि वह व्यक्तियों के बीच पाया जानेवाला एक ऐसा संबंध है, जो वस्तुओं के बीच पाए जानेवाले संबंध के रूप में व्यक्त होता है. Galiani, Della Moneta; Custodi's collection : Scrittori Classici Italiani di Economia Politica. Vol. III, p. 221, Parte. Moderna, Milano, 1803.)

27 . ऐसे नियम के बारे में हम क्या सोचे, जो केवल नियतकालिक क्रांतियों के द्वारा ही सत्ता का प्रदर्शन करता है ? यह प्रकृति के नियम के सिवा और कुछ नहीं है, जो उन व्यक्तियों के ज्ञानाभाव पर टिका होता है, जिनके कार्यों से वह नियम संबंध रखता है. " (Friedrich Engels, Umrisse zu einer Kritik der Nationalokonomie, Deutsch-Franzosische Jaharbucher, ed. by Arnold Ruge and Karl Marx, Paris, 1844.)

28. यहाँ तक कि रॉबिन्सन-मार्का कहानियाँ रिकार्डो के पास भी हैं. आदिम शिकारी और आदिम मछलीमार से वह पण्यों के मालिकों के रूप में फौरन मछली और शिकार का विनिमय करा देते हैं. विनिमय उस श्रम-काल के अनुपात में होता हैं, जो इन विनिमय-मूल्यों में लगा होता है. पर इस अवसर पर उनके उदाहरण में यह काल-दोष पैदा हो जाता है कि वह इन लोगों से, जहाँ तक कि उन्हें अपने औजारों का हिसाब लगाना होता है, उन वार्षिकी-सारणियों को इस्तेमाल कराने लगते हैं, जो १८१७ में लन्दन-एक्सचेंज में इस्तेमाल हो रही थीं. मालूम होता है कि बुर्जुआ रूप के सिवा रिकार्डो समाज के केवल एक ही और रूप से परिचित थे और, और वह था 'मि. ओवेन के समांतर चतुर्भुज का रूप'." (Karl Marx, Zur Keirik der Politischen Oekonomie, S. 38, 39.)

29 . हाल के कुछ दिनों से यह हास्यास्पद धारणा फ़ैल गयी है कि अपने आदिम रूप में सामूहिक संपत्ति खास तौर पर एक स्लाव रूप है, या यहाँ तक कहा जाता है कि वह विशुद्ध रूसी रूप है. हम साबित कर सकते हैं कि यह वही आदिम रूप है, जो रोमन, ट्यूटन और कैल्ट लोगों में था और जिसके अनेक उदाहरण ध्वन्सावशेषों की शक्ल में ही सही, पर आज भी हिंदुस्तान में मिलते हैं. सामूहिक संपत्ति के एशियाई और विशेषकर हिन्दुस्तानी रूपों का अधिक पूर्ण ढंग से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि आदिम सामूहिक संपत्ति के विभिन्न रूपों से किस प्रकर उसके भंग होने के अलग-अलग ढंग निकले हैं. मिसाल के लिए, यह साबित किया जा सकता है कि रोमन और ट्यूटन लोगों में पाए जानेवाले निजी संपती के तरह=तरह के मूल रूप हिन्दुस्तानी सामूहिक संपत्ति के विभिन्न रूपों के आधार पर समझे जा सकते हैं." (कार्ल मार्क्स,Zur Kritik der Politischen Oekonomie, S. 10)

30. मूल्य के परिमाण का रिकार्डो ने जो विश्लेषण किया है – और उन्होंने सबसे अच्छा विश्लेषण किया है -उसकी अपर्याप्तता इस रचना की तीसरी और चौथी पुस्तकों में जाहिर होगी. जहाँ तक आम तौर पर मूल्य का संबंध है, राजनीतिक अर्थशास्त्र की क्लासिकीय धारा की कमजोरी यह है कि उसने कहीं पर भी साफ-साफ और पूर्णतः सचेतन ढंग से श्रम के दो रूपों का अंतर नहीं दिखाया है – एक वह रूप, जब श्रम किसी उत्पाद के मूल्य में प्रकट होता है, और दूसरा वह, जब वही श्रम उस उत्पाद के उपयोग-मूल्य में प्रकट होता है. व्यवहार में, जाहिर है, यह भेद किया जाता है, क्योंकि यह धारा यदि एक समय श्रम के परिमाणात्मक पहलू पर विचार करती है दूसरे समय उसके तुलनात्मक पहलू को लेती है. लेकिन इसका उसे तनिक भी आभास नहीं है कि जब श्रम के विभिन्न प्रकारों के बीच केवल परिमाणात्मक अंतर देखा जाता है, तब उनकी तुलनात्मक एकता अथवा समानता पहले से ही मान ली जाती है और इसलिए उनको पहले से ही अमूर्त मानव-श्रम में बदल दिया जाता है. उदाहरण के लिए, रिकार्डो ने कहा है कि देस्तु दे त्रासी की इस स्थापना से सहमत हैं कि " यह बात चूँकि निश्चित है कि हमारी मूल संपत्ति केवल हमारी शारीरिक और मानसिक क्षमताएँ ही हैं, इसलिए इन क्षमताओं का प्रयोग, किसी न किसी प्रकार का श्रम, हमारा एकमात्र मूल कोष है, और वे तमाम वस्तुएं, जिनको हम धन कहते हैं सदा इस प्रयोग से ही पैदा होती है... यह बात भी निश्चित है कि ये सब वस्तुएं केवल उस श्रम का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिसने उनको पैदा किया है, और यदि उनका कोई मूल्य है या यदि उनके दो अलग-अलग ढंग के मूल्य भी हैं, तो वे केवल उस श्रम के मूल्य से ही निकले हैं, जिससे ये वस्तुएं निकली हैं. "(Ricardo, The Principles of Political Economy, 3rd Ed., London, 1821 p. 334) हम यहाँ पर केवल यही कह सकते हैं कि रिकार्डो ने देस्तु के शब्दों को खुद अपनी, अधिक गूढ, व्याख्या पहना दी है. देस्तु सचमुच जितनी बात कहते हैं, वह यह है कि एक तरफ तो धन कहलानेवाली तमाम चीजें उस श्रम का प्रतिनिधित्व करती है, जिसने उनको पैदा किया है, लेकिन, दूसरी तरफ, वे अपने "दो अलग-अलग ढंग के मूल्यों" (उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य) को "श्रम के मूल्य से " प्राप्त करती हैं. इस प्रकार वह उन सतही राजनीतिक अर्थशास्त्रियों की आम भद्दी गलती को ही दोहराते हैं, जो बाकी पण्यों का मूल्य निर्धारित करने के लिए एक पण्य का (यहाँ पर श्रम का) खुद कुछ मूल्य मान लेते हैं. लेकिन रिकार्डो देस्तु के शब्दों को इस तरह पढ़ते हैं, जैसे उन्होंने यह कहा हो कि श्रम (न कि श्रम का मूल्य) उपयोग-मूल्य तथा विनिमय-मूल्य दोनों में निहित होता है. फिर भी रिकार्डो ने खुद श्रम के दोहरे स्वरूप की ओर, जो दोहरे ढंग से मूर्त रूप प्राप्त करता है, इतना कम ध्यान दिया है कि अपनी Value and Riches, Their Distinctive Properties शीर्षक कृति का पूरा अभ्यास उन्होंने जे.बी.सेय जैसे व्यक्ति की तुच्छ बातों को श्रमपूर्ण समीक्षा करने में खर्च कर डाला, और उसके अंत में उनको यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ है कि देस्तु एक ओर तो उनसे इस बात में सहमत हैं कि मूल्य का स्रोत श्रम है, और दूसरी ओर, वह मूल्य का धारणा के संबंध में जे. बी. सेय से सहमत हैं.

31 . क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र की यह एक मुख्य कमजोरी है कि पण्यों के और, खास तौर पर, उनके मूल्य के विश्लेषण द्वारा वह यह कभी यह नहीं पता लगा पाया है कि मूल्य किस रूप के अंतर्गत विनिमय-मूल्य बन जाता है. यहाँ तक कि एडम स्मिथ और रिकार्डो भी, जो कि इस धारा के सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं, मूल्य के रूप को महत्त्वहीन चीज समझते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में पण्यों के मौलिक स्वभाव से उनका कोई संबंध नहीं है. इसका केवल यही कारण नहीं है कि उनका सारा ध्यान महज मूल्य के परिमाण के विश्लेषण पर केन्द्रित हो गया है. इसका असली कारण और गहरा है. श्रम के उत्पाद का मूल्य-रूप उसका न केवल सबसे अधिक सार्विक रूप भी है, और यह रूप इस उत्पादन को सामाजिक उत्पादन की एक खास किस्म बना देता है और इस प्रकार उसे उसका विशिष्ट ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान कर देता है. अतएव, यदि फिर हम उत्पादन की इस विधि को एक ऐसी विधि समझ बैठते हैं, जिसे प्रकृति ने समाज की प्रत्येक अवस्था के लिए सदा-सदा के लिए निश्चित कर दिया है, तो हम लाजिमी तौर पर उन गुणों को अनदेखा कर जाते हैं, जो मूल्य-रूप के और इसलिए पण्य-रूप के तथा उसके और विकसित रूपों के – यानी द्रव्य-रूप और पूंजी-रूप, आदि – के विशिष्ट एवं भेदकारक गुण हैं. फलतः हम पाते हैं कि उन अर्थशास्त्रियों में, जो इस बात से पूरी तरह से सहमत हैं कि मूल्य के परिमाण का मापदंड श्रम-काल, द्रव्य के विषय में, जो कि सार्विक समतुल्य का पूर्णतया विकसित रूप है, बहुत ही अजीबोगरीब और परस्पर विरोधी विचार पाए जाते हैं. यह बात उस वक्त बहुत उग्र रूप से सामने आती है , जब वे बैंकों के कारोबार पर विचार करना आरंभ करते हैं, जहाँ द्रव्य की साधारण परिभाषाओं से तनिक भी काम नहीं चलता. इसी से एक नई वाणिज्यवादी प्रणाली (गानिल्य आदि) का जन्म हुआ है, जो मूल्य में एक सामाजिक रूप के सिवा -कहना चाहिए कि उस रूप के अमूर्त प्रेत के सिवा – और कुछ नहीं देखती. यहाँ पर मैं साफ और दो टूक तौर पर यह बता दूं कि क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र से मेरा मतलब उस राजनीतिक अर्थशास्त्र से है, जिसने डब्ल्यू. पैटी के समय से ही बुर्जुआ समाज में पाए जानेवाले उत्पादन के वास्तविक संबंधों की छानबीन की है, जो सतही राजनीतिक अर्थशास्त्र नहीं करता है, सतही राजनीतिक अर्थशास्त्र केवल सतहीबातों का अध्ययन करता है. वह अनवरत उसी सामग्री की जुगाली किया करता है, ताकि वह पूंजीपतियों के रोजमर्रा के इस्तेमाल में आ सके. मगर इसके अलावा उसका काम बस यही रहता है कि आत्मसंतुष्ट बुर्जुआ वर्ग की दुनिया के बारे में, जिसे यह वर्ग सभी संभव दुनियाओं से अच्छी समझता है, इस वर्ग के घटिया किस्म के घिसे-पिटे विचारों को बड़े पंडिताऊ ढंग से सुनियोजित विचारधारा के रूप में पेश कर दे और उन्हें चिरंतन सत्य घोषित करे.

32 "अर्थशास्त्रियों का तर्क-वितर्क अजीब ढंग का होता है. उनके लिए केवल दो प्रकार की ही संस्थाएं हैं : बनावटी संस्थाएं और प्राकृतिक संस्थाएं. सामंती संस्थाएं बनावटी संस्थाएं हैं, बुर्जुआ सस्थाएं प्राकृतिक संस्थाएं हैं. इस बात में वे धर्मशास्त्रियों से मिलते हैं. वे लोग भी दो प्रकार के धर्म मानते हैं. उनके अपने धर्म को छोड़कर उनकी दृष्टि में बाकी हर धर्म मनुष्यों की मनगढ़ंत है, जब कि अपने धर्म के बारे में वे समझते हैं कि वह ईश्वर से उद्भूत हुआ है.-(Karl Marx, Misere de la Philosophie, Response a la philosophie de la misere par M. Proudhon, 1847, p. 113) मि. बस्तिया के हाल पर सचमुच हंसी आती है. उनका ख्याल है कि प्राचीन काल में यूनानी और रोमन लोग केवल लूट-मार के सहारे ही जीवन बसर करते थे. लेकिन जब लोग सदियों तक लूट-मार करते हैं , तो कोई ऐसी चीज हमेशा होनी चाहिए , जिसे वे लूट सकें; लूटमार की चीजों का लगातार पुनरुत्पादन होते रहना चाहिए. परिणाम स्वरूप इससे ऐसा लगेगा कि यूनानियों और रोमनों के यहाँ भी उत्पादन की क्रिया थी. चुनांचे उनके यहाँ कोई अर्थव्यवस्था भी रही होगी, और जिस प्रकार बुर्जुआ अर्थव्यवस्था हमारी आधुनिक दुनिया का भौतिक आधार है, उसी प्रकार वह अर्थव्यवस्था यूनानियों और रोमनों की दुनिया का भौतिक आधार रही होगी. या शायद बस्तिया के कथन का अर्थ यह है कि दास प्रथा पर आधारित उत्पादन विधि लूटमार की प्रणाली पर आधारित होती है ? यदि यह बात है, तो बस्तिया खतरनाक ज़मीन पर पांव रख रहे हैं. यदि अरस्तू जैसा महान विचारक दासों के श्रम को समझने में गलती कर गया, तो बस्तिया जैसा बौना अर्थशास्त्री मजदूरी लेकर काम करने वाले मजदूरों के श्रम को कैसे सही तौर पर समझ सकता है ? मैं इस अवसर से लाभ उठाकर अमेरिका में प्रकाशित एक जर्मन पत्र के उस एतराज का संक्षेप में जवाब देना चाहता हूँ, जो उसने मेरी रचना, Zur Kritik der Politschen Oekonomie, 1859 पर किया है. मेरा मत है कि प्रत्येक विशिष्ट उत्पादन-प्रणाली और उसके अनुरूप सामाजिक सम्बन्ध, या संक्षेप में कहें, तो समाज का आर्थिक ढांचा ही वह वास्तविक आधार होता है, जिस पर कानूनी और राजनीतिक उपरी ढांचा खडा किया जा सकता है और जिसके अनुरूप चिंतन के भी कुछ निश्चित सामाजिक रूप होते हैं; मेरा मत है कि उत्पादन की प्रणाली आमतौर पर सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक जीवन के स्वरूप को निर्धारित करती है. इस पत्र की राय में, मेरा यह मत हमारे अपने ज़माने के लिए तो बहुत सही है, क्योंकि उसमें भौतिक स्वार्थों का बोलबाला है, लेकिन वह मध्य युग के लिए सही नहीं है, जिसमें कैथोलिक धर्म का बोलबाला था, और वह एन्थेंस और रोम के लिए भी सही नहीं है, जहाँ राजनीति का ही डंका बजता था. अब सबसे पहले तो किसी का यह सोचना सचमुच बड़ा अजीब लगता है कि मध्य युग और प्राचीन संसार के बारे में ये पिटी-पिटाई बातें किसी दूसरे को मालूम नहीं है. बहरहाल इतनी बात तो स्पष्ट है कि मध्य युग के लोग केवल कैथोलिक धर्म के सहारे या प्राचीन संसार के लोग केवल राजनीति के सहारे जिंदा नहीं रह सकते थे. इसके विपरीत, उनके जीविका कमाने के ढंग से ही यह बात साफ़ हो जाती है कि क्यों एक काल में राजनीति और दूसरे काल में कैथोलिक धर्म की मुख्य भूमिका थी. जहाँ तक बाकी बातों का सम्बन्ध है, तो, उदाहरण के लिए, रोमन गणतंत्र के इतिहास की मामूली जानकारी भी यह जानने के लिए काफी है कि रोमन गणतंत्र का गुप्त इतिहास वास्तव में उसकी भूसंपत्ति का इतिहास है. दूसरी और, डॉन क्विकज़ोट बहुत पहले अपनी इस गलत समझ का खामियाजा अदा कर चूका है कि मध्य युग के सूरमा-सरदारों जैसा आचरण समाज के सभी आर्थिक रूपों से मेल खा सकता है.

33 Observations on Certain Verbal Disputes in Political Economy, Particularly Relating to Value, and to Demand and Suply, London, 1821, p. 16.

34 S. Bailey, A Political Dissertation on the Nature etx. of Value, P. 165.

35 Observations के लेखक और एस. बेली ने रिकार्डो पर यह आरोप लगाया है कि उन्होंने विनिमय-मूल्य को सापेक्ष से निरपेक्ष चीज में बदल दिया है. सचाई इसके विपरीत है. रिकार्डो ने वस्तुओं के बीच, जैसे हीरों और मोतियों के बीच, जो प्रकट संबन्ध होता है, यानी जिस संबन्ध में वस्तुएं विनिमय-मूल्यों के रूप में सामने आती हैं, उसका स्पष्टीकरण किया है और इस आभासी संबन्ध के पीछे छिपे हुए असली संबन्ध को खोलकर बताया है कि यह केवल मानव-श्रम की अभिव्यंजनाओं का संबन्धहै . यदि रिकार्डो के अनुयायियों ने बेली को किसी कदर कठोर उत्तर दिया है और फिर भी वे उनको समुचित उत्तर नहीं दे पाए हैं, तो इसका कारण हमें इस बात में खोजना चाहिए कि इन लोगों को रिकार्डो की ही रचनाओं में कोई ऐसी कुंजी नहीं मिल सकी थी, जिससे वे मूल्य तथा उसके रूप – विनिमय-मूल्य – के बीच विद्यमान गुप्त संबंधों को समझ पाते.